श्री डी० एन० राय सा० के लिये

गुरू-उपदेश

बैष्णवधाम

गुरू आश्रम भटिनीपार

गोरखपुर (उ.प्र.)

व

गुरू आश्रम चन्दई, जिला – रीवा (म.प्र.)

के

धर्मगुरू

स्वामी रमा विलास जी महाराज

पंजीयन क्र० MPHIN/2000/2174

गुरू–उपदेश

(आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना का सजग प्रहरी)

गुरू–उपदेश (त्रैमासिक)

वर्ष 6	1 अप्रैल 2005	अंक 1	मूल्य 100/–

संरक्षक	–	स्वामी रमा विलास जी महाराज
प्रधान सम्पादक	–	स्वामी गरूड़ जी महाराज (ब्रह्मर्षि बाबा)
सम्पादक समिति	–	डा0ए0के0मिश्रा, श्री राम उजागर तिवारी (मुम्बई), डा0आर0पी0 धीमान्(गुजरात), पी0एन0गोस्वामी (असम), प्रवीर व प्रबोध।
सम्पादकीय व्यवस्था	–	डा0 यागेन्द्र नारायण मिश्र (का0 हि0 वि0नारस)
प्रकाशक	–	स्वामी गरूड़ जी महाराज
प्रकाशन संस्थान	–	श्री वैष्णवपीठ गुरू आश्रम चन्दई, पत्रा0–चन्दई रीवा (म0प्र0)
मुद्रक	–	अनन्त श्री कम्प्यूटर सेन्टर, चिरहुला, गुढ़ रोड रीवा (म0प्र0)
प्रशासनिक कार्यालय व सम्पर्क हेतु	–	सरस्वती मंदिर सेन्ट्रल एकेडेमी सिविल लाइन रीवा (म0प्र0)–486001
दूरभाष	–	07662–241787, 506665

सदस्यता शुल्क

वार्षिक 100/–	12 वर्षीय 1000/–	आजीवन 3000/–

अनुक्रमिणका

१. सम्पादकीय
२. आश्चर्य जनक किन्तु सत्य
३. महर्षि पतञ्जलि
४. दो ही मार्ग
५. भगवान् कपिलदेव
६. महर्षि शौनक
७. महर्षि पराशर
८. महर्षि वेदव्यास
९. मुनि शुकदेव
१०. महर्षि जैमिनि
११. मुनि सनत्सुजात
१२. महर्षि वैशभ्यायन
१३. महात्मा भद्र
१४. महर्षि मुल
१५. महर्षि मैत्रेय
१६. भक्त मुकर्मा
१७. भक्त सुब्रत
१८. भिक्षु विप्र
१९. महर्षि बक
२०. आचार्य कृप
२१. महात्मा गोकर्ण
२२. सिद्ध महर्षि
२३. पुराण वक्ता सूतबी
२४. महाराज पृथु
२५. राजा महीरथ
२६. त्रैमासिक राशिफल
२७. जगद्गुरू ब्रह्मर्षि बाबा के कार्यक्रम

सम्पादकीय

गुरू-उपदेश के छठें वर्ष में प्रवेश पर आप सभी को बहुत-बहुत बधाई।

२४ घंटे में मनुष्य २१६०० सांसे लेता है, हमारा एक भी पल एक भी श्वॉस व्यर्थ न जाय यह हमारा प्रयास होना चाहिए। हमारे ऋषियों ने तपस्वियों ने एक एक श्वॉस को उपयोगी बनाने का रामबाण औषधि हमें प्रदत्त किया है। फिर भी हम उस ओर ध्यान न देकर व्यर्थ में समय को नष्ट करते चले जा रहे हैं। एक एक पल को उपयोगी बनाने के लिए बहुत ही सरल मार्ग दिया है। प्रातःकाल उठने पर सूर्योदय के पहले अगर हम अजपाजप संकल्प कर लें तो २४ घंटे में एक भी छड़ व्यर्थ नही होगा चाहे हम जागृत या सुसुप्त अवस्था में हों । प्रत्येक स्थिति में हंसः का जाप श्वॉस क्रिया द्वारा अनायास होता ही रहता है। संकल्प कर देने से यह जप मनुष्य द्वारा किया हुआ माना जाता है। हम अपने दाहिने हॉथ की हथेली में बायें हॉथ की तर्जनी अँगुली लगाकर महीने का नाम व पक्ष तिथि का नाम दिन का नाम अपना गोत्र व नाम लेकर सूर्योदय से सूर्योदय तक श्वॉस क्रिया द्वारा २१६०० अजपाजप गायत्री महामंत्र हंसः (सोऽहं, गणेश, ब्रह्मा विष्णु, महेश, जीवात्मा ''परमात्मा'', गुरू) प्रीत्यर्थे जप का संकल्प लेता हूँ इस प्रक्रिया से हमारी श्वॉस स्वमेव हमारे संकल्प से जुड़ जायेगी और जाप चलता रहेगा। बिना प्रयास ऐसे सरलतम उपाय को भी अगर हम ग्राह्य नही कर सकते तो जीवन के महत्व को समझने की चूक कर बैठेंगे।

हम अपने मार्ग पर आगे बढ़ते चले इसके लिए आवश्यक है कि हम भगवान और गुरू को साथ रखें। वह कृपा तभी करते हैं। जब अन्दर की गन्दगी निकल जाती है। हमारे अन्दर राग व द्वेष ये दो चीजें बड़ी खतरनाक हैं इसी को द्वंद कहते हैं। कहीं -कहीं लगाव होना और कही दुश्मनी होना अगर ये हो गया तो समझिये हृदय में आ गया। और उसका फल ऐसा मिलता है कि हम भटक जाते हैं। इसी लिए कहा गया है कि रात्रि सोने से पूर्व हम दिनभर के सम्पादित कार्य व व्यवहार पर एक बार दृष्टिपात अवश्य करें । तथा विचार करें कि आज के कार्य में कहॉ त्रुटि हुई और मन में संकल्प लें कि आगे ऐसी त्रुटि नही करेंगें। अगर हम दूसरे के प्रति दुर्भावना करेंगे मन से ही तो वह हमारे हृदय में आ जायेगा। एक ही तो मन है उसी में गुरू और भगवान को लाना है और उसी में हमने जिसके प्रति दुर्भावना किया उसको लाकर धर दिया जाय तो वह गंदा हो गया और ऐसी स्थित में हम चाहें जितना भगवान को जपते रहें क्या मिलेगा? केवल हम दोष दे सकते हैं भगवान और गुरू को। राग व द्वेष दो ही ऐसे क्षेत्र है जो सारे संसार को बॉध रखा है। राग करना है तो केवल भगवान और गुरू से करें तथा द्वेष करना है तो काम से, क्रोध से, लोभ से, मोह से , ईर्ष्या से करें। इन्हें अपने पास न फअकने दें। अन्दर की पवित्रता होनी आवश्यक है, अन्दर दीनता, सहनशीलता, नम्रता यही गुण रहे और बाहर से आवश्यकतानुसार व्यवहार और उसका जबावी व्यवहार होना चाहिये। लेकिन होता ठीक इसके विपरीत है। अन्दर काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष आदि भरा रहता है और बाहर से हम मधुर बाणी बोलते हैं अन्दर गलत है और बाहर हम सही कर लेते हैं। अन्दर गड़बड़ है क्रोध है और बाहर से हम मधुरता का व्यवहार कर लेते हैं। सामान्यतया अन्दर गडबड और बाहर अच्छा व्यवहार कर लेते हैं सभी। और यही गिरावट का मार्ग है। महापुरूष अन्दर से ठीक होता लेकिन बाहरी व्यवहार उसका गडबड होता है कहने का तात्पर्य यह है कि हम अभ्यास के द्वारा अन्दर ठीक करें। अन्दर ठीक हो जायेगा तो सब ठीक हो जायेगा। और यह तभी सम्भव हो सकेगा जब हम गुरू उपदेश का सहारा लेंगे। और गुरू उपदेश उस नौका का कार्य करेगी जो नदी के इसपार से उस पार तक पहुँचा देती है।

अन्त में गुरू उपदेश के छठवें वर्ष में प्रवेश पर हमारा यही संकल्प है कि हम अधिकाधिक लोगों का उचित मार्ग दर्शन कराकर मार्ग प्रशस्त कर दें।

शुभकामनाओं सहित

(सम्पादक)

आश्चर्यजनक किन्तु सत्य

- स्वामी लालजी प्रपन्नाचार्य

मैने पिछले अंकों में भी जगद्गुरू ब्रह्मर्षि बाबा के अद्भुत चमत्कारी रहस्यों की जानकारी दी थी। यहाँ तो प्रतिदिन कुछ न कुछ चमत्कारिक घटनाएँ आम लोगों को देखने में मिलती रहती है। बाबा सबसे यही कहते हैं देखो भाई मेरे पास कुछ नही है न तो कोई साधना है, न कोई कोई मंत्र-तंत्र जो कुछ होता है भगवान करता है जिस पर वह कृपा करना चाहता है कर देता है। मै यदि यह कहूँ कि मेरे पास कुछ है और मै ऐसा करके दिखा सकता हूँ या मैं किसी से कहूँ कि मृत्यु शैया पर लेटे हुए व्यक्ति को उठाकर दौड़ा दूँ तो इससे बड़ा भ्रम और भूल कुछ नही हो सकता, केवल विश्वास भगवान पर करो जो कुछ करेगा वही करेगा। लाभ तो हर व्यक्ति को कुछ न कुछ अवश्य होता है जिसके कारण बाबा लोगों के बीच में पहुँचते रहते हैं बाबा कहते हैं कि मेरे पहुंचने से यदि किसी के जीवन में खुशहाली आ जाती है तो हमें अवश्य दौड़ना चाहिए, अवश्य लोगों के बीच पहुंचना चाहिए। हमने देखा कि रीवा शहर में जहाँ बाबा निवास करते हैं वहाँ के लोग बाबा को नही जानते इसका कारण भी मेरे समझ में आया कि बाबा जंगल से आते हैं या भ्रमण से लौटने पर कुछ दिन रीवा में प्रवास करते हैं अपने छोटे से लाइब्रेरी में बैठकर अध्ययन करना या कहीं कोई जड़ी-बूटियों औषधियों को भेजना है तो उसे तैयार करते हैं। जब रीवा के लोग बाबा को समझ जायेंगे तब लगता है शायद ही बाबा का रूकना यहाँ सम्भव हो पावे? कुछ आश्चर्य जनक घटनाओं का उल्लेख कर देना अवश्य समझता हूँ।

१. अभी कलकत्ता प्रवास पर छः महिलाओं के छाती में कठानें थी (जो कैंसर का बुनियाद बन चुका था) बाबा ने मात्र ४० सेकेण्ड में बिना किसी चीड़फाड़ के आपरेशन कर दिया और गाँठें उड़ गयीं।

२. श्रीअनिल गुप्ता कलकत्ता के हार्ट में ७० प्रतिशत ब्लाकेज था डाक्टर ने बाईपास सर्जरी के लिए सलाह दिया। उन दिनों बाबा कलकत्ते प्रवास पर थे अनिल गुप्ता जी समाचार पत्रों से प्राप्त जानकारी के अनुसार बाबा के पास पहुँच गये। बाबा ने अनिल के छाती पर हाँथ रख दिया तो सारा ब्लाकेज दूर हो गया। दूसरे दिन डाक्टर के पास जाकर पुनः जाँच करने का निवेदन किया तो डाक्टर जाँच में पाते हैं कि ७० प्रतिशत ब्लाकेज ०प्रतिशत पर हो गया। डाक्टर ने कहा-गुप्ता जी ऐसा अद्भुत चमत्कार कैसे हो गये। मेरी जानकारी में विश्व में हमें ऐसी अनहोनी सुनने को नही मिली अनिल ने कहा सब गुरूदेव की कृपा है।

३. कलकत्ते में अब तक पाँच हजार से अधिक लोग बाबा का सानिध्यता का लाभ उठा चुके हैं साथ ही जीवन को खुशहाल बनाने के लिए बाबा का आर्शीवाद प्राप्त करने हेतु दूरभाष पर भी संपर्क करते रहते हैं।

४. विषधर सर्पदंश पर बाबा के दृष्टिपात मात्र से जहर उड़ जाता है दूरभाष पर भी कई लोगों को फूँक मार देने से वे ठीक हो गये हैं इसके पूर्व वह विवरण दे चुका हूँ कि सर्प दंस पर मृत्यु हो जानेके बाद भी बाबा के दृष्टिपात पर वह व्यक्ति जीवित हो उठा है।

५. हर मर्ज के लिए कोई न कोई नुस्खा बाबा बता देते हैं जो लाभ कर देता है।

६. अब तक लगभग २०० से अधिक महिलाओं के छाती की गठान बाबा मात्र ४० सेकंड में उड़ा दिये हैं।

७. कठिन से कठिन सिरदर्द, कमरदर्द या किसी प्रकार का दर्द बाबा के स्पर्श से छू हो जाता है।

कलकत्ते के किसी प्रकार की कोई जानकारी किसी को प्राप्त करनी हो तो दैनिक विश्व मित्र के सम्पादक श्रीनरेश अग्रवाल जी से दूरभाष नम्बर मो०-९८३०१६०४५२ नि०-२४६४२३२५ पर संपर्क कर सकते हैं।

महर्षि पतञ्जलि

यम नियम और उनका फल:-

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहार
धारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि।

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि- ये आठ (योगके) अंग हैं।

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमा:।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी का अभाव) ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह (संग्रह का अभाव)-ये पॉंच यम है।

जातिदेशकालसमयानवच्छिन्ना: सार्वभौमामहाव्रतम्।

(उक्त यम) जाति, देश, काल और निमित्त की सीमा से रहित सार्वभौम होने पर महाव्रत हो जाते हैं।

शौचसंतोष, तप: स्वाध्याय और ईश्वर-शरणागति- (ये पॉंच) नियम हैं।

वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम् ।

जब वितर्क (यम और नियमों कें विरोधी हिंसादि के भाव) यम-नियम के पालन में बाधा पहुॅंचावें, तब उनके प्रतिपक्षी विचारों का बार-बार चिन्तन करना चाहिये।

वितर्का हिंसादय: कृतकारितानुमोदिता लोभक्रोधमोह पूर्वका मृदुमध्याधिमात्रा दु:खज्ञानानन्तफल: इति प्रति पक्षभावनम् ।

(यम और नियमों के विरोधी) हिंसा आदि वितर्क कहलाते हैं। (वे तीन प्रकार के होते हैं-) स्वयं किये हुए दूसरो से करवाये हुए और अनुमोदित किये हुए। इनके कारण, लोभ, क्रोध और मोह हैं। इनमें भी कोई छोटा, कोई मध्यम और कोई बहुत बड़ा होता है। ये दु:ख और अज्ञान रूप अनन्त फल देने वाले हैं- इस प्रकार (विचार करना ही) प्रतिपक्ष की भावना है।

अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यारा:।

अहिंसा की दृढ़ स्थिति हो जाने पर उस योगों के निकट सब प्राणी वैरका त्याग कर देते हैं।

सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्।

सत्य की दृढ़ स्थिति हो जाने पर (योगी में) क्रियाफल के आश्रय का भाव (आ जाता है)।

अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम् ।

ब्रह्मचर्य की दृढ़ स्थिति हो जाने पर सामर्थ्य का लाभ होता है।

अपरिग्रह की स्थिति हो जाने पर पूर्वजन्म कैसे हुए थे, इस बात का भलीभॉंति ज्ञान हो जाता है।

शौचात्वांङ्गजुगुप्सा परैरसंसर्ग:।

शौच के अभ्यास से अपने अंकों में घृणा और दूसरों से संसर्ग न करने की इच्छा उत्पन्न होती है।

सत्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्रयेन्द्रियजयात्मदर्शनयोग्यत्दानि च

अन्त:करण की शुद्धि, मन में प्रसन्नता, चित्त की एकाग्रता, इन्द्रियों का वश में होना और आत्मसाक्षात्कार की योग्यता- (ये पॉंचों भी होते हैं।)

संतोषदनुत्तमसुखलाभ: ।

संतोष से ऐसे सर्वोत्तम सुख का लाभ होता है, जिससे उत्तम दूसरा कोई सुख नहीं है।

कायेन्द्रिसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपस: ।

तप के प्रभाव से जब अशुद्धि नाश हो जाता है, तब शरीर और इन्द्रियों की सिद्धि हो जाती है।

स्वाध्यायादिष्टदेवतासंप्रयोग: ।

स्वाध्यय से इष्टदेवता की भलीभॉंति प्राप्ति (साक्षात्कार) हो जाती है।

समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात् ।

ईश्वर-प्राणिधान से समाधि की सिद्धि हो जाती है।

दो ही मार्ग

श्रुति ने प्रार्थना का संदेश दिया- 'तमसो मा मार्ग में ज्योतिर्गमय।' मृत्योर्मा अमृतं गमय।'

विज्ञान- भोगवासना-आधुनिक सभ्यता-कोई नाम लीजिये, बात एक ही है। आज के इस अर्थप्रधान युग का, इस भोग प्रधान समय का यह संदेश है- 'प्रगति करो!' 'असंतोष चिरजीवी हो!' क्योंकि- 'आवश्यकता आविष्कार की जननी है।' यह प्रगति असंतोष की ओर, आवश्यकता की वृद्धि की ओर, संघर्ष की ओर है। यह प्रगति तोप से टेंक, टेंक से वायुयान और बम तथा उससे परमाणु-बम, हाइड्रोजन-बम, कोबाइल्ड-बम, नाइट्रोजन बम की ओर-जीवन से मृत्यु की ओर है। प्रकाश से अन्धकार की ओर है यह प्रगति -इसमें विवाद के लिए स्थान नही ळें

दो मार्ग हैं- प्रार्थना का मार्ग और प्रगति का मार्ग। एक श्रुति का मार्ग है और दूसरा भोग का मार्ग है। एक जाता है अन्धकार से प्रकाश की ओर और दूसरा प्रकाश से अन्धकार की ओर।

मनुष्य एक दुराहे पर खड़ा है। मनुष्यजीवन जीव को स्वयं एक दुराहेपर लाकर खड़ा कर देता है। वह किधर जायगा? उसे देव बनना है या दानव?

प्रकाश का मार्ग- संयम, सदाचार, त्याग, परोपकार, भगवद्भजन का पवित्र मार्ग है। वहॉं सात्त्विकता है, स्वच्छता है, शुभ्रता है। संतोष और शान्ति उसके पुरस्कार हैं। अनन्त आनन्द, अखण्ड शान्ति ही उसके गन्तव्य हैं। श्रद्धा और विश्वास का सम्बल लेकर यात्री इस मार्ग से सच्चिदानन्दघन परमातमत्व को प्राप्त करता है। शास्त्र ही इस मार्ग का मार्गदर्शक है। भगवान ब्यास का ही अनुगमन करना है इस मार्ग में। वे ही इस पथ के परम गुरू-परम निर्दिष्ट हैं।

आलस्य प्रमाद, उच्छृलता-राग,द्वेष, मोह-स्वार्थ, इन्द्रियतृप्ति, परनिन्दा-कुछ जगत् में उलूक प्रकृति के प्राणी होते हैं। प्रकाश से उनकी सहज शत्रुता होती है। प्रकाश के पथ में अन्धकार के धर्मों को स्थान नही हो सकता। अन्धकार के धर्मों से जिनका अनुशरण है प्रकाश का पथ उन्हे कैसे प्रिय हो सकता है। प्रकाश के पथ में कहॉं कोई आकर्षण सम्मुख दिखता है। वहॉं तो चलना है-शास्त्र का संत का अनुगमन करते चलना है।

अन्धकार का मार्ग- अज्ञान ही अन्धकार का स्वरूप है। ठोकरें, संताप, क्रूर पशुओं के नृशंस आक्रमण यह सहज क्रिया है वहॉं।

काम, क्रोध, लोभ, मोह- अन्धकार के धर्म उससे पनपेंगें, प्रफुल्ल रहेंगे अज्ञात भविष्य-छिपा भय और मोहक झिल्ली-झंकारें-ऐसे मार्ग में मृत्यु, नरक एवं यातनाएँ तो होंगी ही।

सम्मुख का कल्पित मोह-कुछ उलूक प्रकृति प्राणी है विश्व में। अन्धकार ही उन्हें आकर्षित करता है कलयुग ऐसे प्राणियों को बहुलता का युग ठहरा यह। काम का आवाहन है इस मार्ग की ओर। आँख, नाक, कान, जीभ की तृप्ति के प्रलोभन का साधन इधर आकर्षण उत्पन्न करते हैं और इस आकर्षण में जो फँसा -आगे भय है- अन्धकार है।

मनुष्य दुराहे पर खड़ा है किधर जायेगा वह स्वयं उसे सोचना है प्रकाश का पथ और अधंकार का मार्ग-मार्ग तो दो ही हैं।

भगवान कपिल देव

धन-मदान्धों की दशा ,ऐश्वर्यमदमत्तानां
क्षुधितानां च कामिनाम्। अहंकारविमूढ़ानां
विवेको नैव जायते।। किमत्र चित्रं सुजनं
बाधन्ते यदि दुर्जना:। महीरूहांश्रानुतटे पातयन्ति नदीरया:।।
यत्रश्रीयौंवनं वापि परदारोऽपि तिष्ठति। तत्रसर्वान्धता नित्यं मूर्खत्वं चापि जायते।।
भवेद्यदि खलस्य श्री: सैव लोकविनाशिनी। यथा सखाग्ने: पवन: पन्न्गत्य पथो यथा।
अहो धनमदान्धस्तु पश्यन्नपि न पश्यति। यदि पश्त्यातमहितं स पश्यति न संशय:।।

जो ऐश्वर्य के मद से उन्मत्त हैं,जो भूख से पीड़ित है,जो कामी हैं तथा जो अहंकार से मूढ़ हो रहे है,ऐसे मनुष्यों को विवेक नहीं होता। यदि दुष्ट मनुष्य सज्जनों को सताते हैं तो इसमें क्या आश्चर्य है? नदी का वेग किनारे पर उगे हुए वृक्षों को भी गिरा देता है। जहाँ धन है,जवानी है तथा पर स्त्री भी है,वहाँ सदा सभी अंधे और मूर्ख बने रहते हैं। दुष्ट के पास लक्ष्मी हो तो वह लोक का नाश करने वाली ही होती है। जैसे वायु अग्नि की ज्वाला को बढ़ाने मे सहायक होता है,और जैसे दूध साँप के विष को बढ़ाने में कारण होता है,वैसे ही दुष्ट की लक्ष्मी उसकी दुष्टता को बढ़ा देती है। अहो! धन के मद से अंधा हुआ मनुष्य देखते हुए भी नहीं देखता । यदि वह अपने हितको देखता है,तभी वह वास्तव में देखता है।

महर्षि शौनक

तृष्णा का अन्त नहीं है , शोकस्थान सहस्त्राणि
भयस्थानशतानि च । दिवसे दिवसे मूढ-
माविशन्ति न पण्डितम्।। तृष्णा हि सर्वपापिष्ठा
नित्योद्वेगकरी स्मृता । अधर्म बहुला चैव घोरा पापानुबन्धिनी।।
या दुस्त्यजा दुर्भतिभिर्या न जीर्यति जीर्यत:। योऽसौ प्राणान्तिको रोगस्तां तृष्णां त्यजत: सुखम्।।
अनाद्यन्ता तु सा तृष्णा अन्तर्देहगता नृणाम्। विनाशयति भूतानि अयोनिज इवानल:।।
अन्तो नास्ति पिपासाय: संतोष: परमं सुखम्। तस्मात् संतोषमेवेह परं प्श्यन्ति पण्डिता:।।
अनित्यं यौवनं रूपं जीवितं रत्नसंच्चय:। ऐश्वर्य प्रियसंवासों गृध्येत्तत्र न पण्डित:।।
इज्याध्ययनदानानि तप: सत्यं क्षमा दम:। अलोभ इति मार्गोऽर्ध्र धर्मस्याष्टविध: स्मृत:।।

मूर्ख मनुष्यों के प्रतिदिन सैकड़ों और हजारों भय और शोक के अवसर आया करते हैं,ज्ञानियों के सामने नहीं।

यह तृष्णा महापापिनी है,उद्वेग पैदा करनेवाली है,अधर्मसे पूर्ण और भयंकर है तथा समस्त पापों की जड़ है। दुर्बुद्धिवाले मूर्ख इसका त्याग नहीं कर सकते। बूढ़े होने पर भी यह बूढ़ी नहीं होती। यह प्राणों का अन्त कर देनेवालही बीमारी है,इसका त्याग कर देने पर ही सुख मिलता है। जैसे लोहे के भीतर प्रवेश करके सर्वनाशक अग्नि उसका नाश कर देती है,वैसे ही प्राणियों के हृदय में प्रवेश करके यह तृष्णा भी उनका नाश कर देती है और स्वयं नहीं मिटती।

तृण्णा का अन्त नहीं है,संतोष में ही परम सुख है। इसलिए बुद्धिमान पुरूष संतोष को ही श्रेण्ठ मानते है। यह जवानी,सुन्दरता, जीवन रत्नों के ढेर ऐश्वर्य और प्रिय वस्तुओं तथा प्राणियों का समागम-सभी अनित्य हैं। इसलिए विद्वानों को उचित है कि वे इनके संग्रह -परिग्रह का त्याग कर दें।

यज्ञ, स्वाध्याय, दान, तप, सत्य, क्षमा, दम तथा लोभ का अभाव -ये धर्म के आठ मार्ग माने गये हैं।

महर्षि पाराशर

प्रातर्निशि तथा संध्यामध्याह्नादिषु संसारन्।
नारायणमवापोति सद्यः पापक्षयान्नरः।।

प्रातःकाल, सायंकाल, रात्रि में अथवा मध्यान्ह में किसी भी समय श्री नारायण का स्मरण करने से पुरूष के समस्त पाप तत्काल क्षीण हो जाते हैं।

तस्मादहर्निशं विष्णुं संस्मरन् पुरूषो मुने।
न याति नरकं मर्त्यः संक्षीणाखिलपातकः।।

इसलिएं मुनि! श्रीविष्णु भगवान का अहर्निश स्मरण करने से संपूर्ण पाप क्षीण हो जाने के कारण मनुष्य नरक में फिर नही जाता ।

अन्येषां यो न पापानि चिन्तयत्यात्मनो यथा। तस्य पापागमस्तात हेत्वभावान्ने विद्यते ।।
कर्मणा मनसा वाचा परपीड़ां करोति यः। तद्बीजजन्म फलति प्रभूतं तस्य चाशुभम्।।
सोऽहं न पापमिच्छामि न करोमि वदामि वा। चिन्त्तयन् सर्वभूतस्थमात्मन्यपि च केशवम्।।
शारीरं मानसं दुःखं दैवं भूतभर्व तथा। सर्वत्र शुभचित्तस्य तस्य में जायते कुतः।।
एवं सर्वेषु भूतेषु भक्तिरव्यभिचारिणी। कर्तव्या पण्डितैर्ज्ञात्वा सर्वभूतमयं इरिम् ।।

जो मनुष्य अपने समान दूसरों का बुरा नही सोचता, हे तात्! कोई कारण न रहने से उसका भी कभी बुरा नही होता! जो मनुष्य मन, वचन या कर्म से दूसरों से कष्ट देता है, उसके उस परपीड़ा रूप बीज से ही उत्पन्न हुआ अत्यंत अशुभ फल उसको मिलता है अपने सहित समस्त प्राणियों में श्रीकेशव को वर्तमान समझकर मैं न तो किसी का बुरा चाहता हूँ और न कहता या करता हूँ। इस प्रकार सर्वत्र शुभ चित्त होने से मुझको शारीरिक, मानसिक, दैविक अथवा भौतिक दुख कैसे प्राप्त हो सकता है। इसी प्रकार भगवान को सर्वभूतमय जानकर विद्यानों को सभी प्राणियों में अनन्य भक्ति करनी चाहिए।

तस्माद् दुःखात्मकं नास्ति न च किंचित् सुखात्मकम्।
मनसः परिणामोऽयं सुखदुःखादिलक्षणः।।

अतः कोई भी पदार्थ दुःखमय नही है और न कोई सुखमय है। ये सुख दुःख तो मन के विकार हैं।

मूढानामेव भवति क्रोधो ज्ञानवतां कुतः।
हन्यते तात कः केन यतः स्वकृतभुक् पुमान।।

संचितस्यापि महता वत्स क्लेशेन मानवैः।
यशसस्तपसश्चैव क्रोधो नाशकरः परः।।
स्वर्गापवर्गव्यासेधकारणं परमर्षयः।
र्वजयन्ति सदा क्रोधं तात मा सद्वशो भव।।

क्रोध तो मूर्खों को ही हुआ करता है, विचारवानों को भला कैसे हो सकता है। भैया! भला, कौन किसी को मारता है। क्योंकि पुरूष स्वयं ही अपने किये का फल भोगता है। प्रियवर! यह क्रोध तो मनुष्य के अत्यंत कष्ट से संचित यश और तप का भी प्रबल नाशक है। हे तात्! इस लोक और परलोक दोनों को बिगाड़ने वाले इस क्रोध का महर्षिगण सर्वदा त्याग करते हैं।, इसलिए तू इसके वशीभूत मत हो।

स्निग्धैश्च क्रियमाणानि कर्माणीह निवर्तयेत्।
हिंसात्मकानि सर्वाणि नायुरिच्छेत्परायुषा।।

अपने स्नेही जन भी यदि यहाँ हिंसात्मक कर्म कर रहे हों तो उन्हें रोंकें, कभी दूसरें की आयु से अपनी आयु की इच्छा न करें। (दूसरों के प्राण लेकर अपने जीवन की रक्षा न चाहें)

एकः शत्रुर्न द्वितीयोऽस्ति शत्रु, राज्ञानतुल्यः पुरूषस्य राजन् ।
येनावृतः कुरूते सम्प्रयुक्तो, घोराणि कर्माणि सुदारूणानि।।

राजन! जीव का एक ही शत्रु है, उसके समान दूसरा कोई शत्रु नही है- वह है अज्ञान। उस अज्ञान से आवृत और प्रेरित होकर मनुष्य अत्यन्त निर्दयतापूर्ण तथा भयंकर कर्म कर बैठता है।

यो दुर्लभतरं प्राप्य मानुष्यं द्विषते नरः।
धर्मावमन्ता कामात्मा भवेत् स खलु वन्च्यते।।

जो मनुष्य परम दुर्भल मानव-जन्म को पाकर भी काम परायण हो दूसरों से द्वेष करता और धर्म की अवहेलना करता रहता है, वह महान् लाभ से वंचित रह जाता है।

महर्षि वेदव्यास

यत्कृते दशभिर्वर्षैं स्त्रेतायां हायनेन तत् । द्वापरे तच्च मासेन ह्यहोरात्रेण तत्कलौ।।
तपसो ब्रह्मचर्यस्य जपादेश्च फलं द्विजाः। प्रामोति पुरूषस्तेन कालिस्साध्विति भाषितम्।
ध्यायन् कृते यजन् यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन्। यदामोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम् ।।

द्विजगण! जो फल सत्यगुग में दस वर्ष तपस्या, ब्रह्मचर्य और जप आदि करने से मिलता है, उसे मनुष्य त्रेता में एक वर्ष, द्वापर में एक मास और कलियुग में केवल एक दिन रात में प्राप्त कर लेता है।, इसी कारण मैंनें कलियुग को श्रेष्ठ कहा है। जो फला सत्ययुग में ध्यान, त्रेता में यज्ञ और द्वापर में देवार्चन करने से प्राप्त होता है, यही कलियुग में श्रीकृष्णचन्द्र का नाम-कीर्तन करने से मिल जाता है।

सुख दुःख, जन्म-मृत्यु

सुखस्यानन्तरं दुःखं दुःखस्यानन्तरं सुखम्।
पर्यायेणोपसर्पन्ते नरं नेमिमरा इव।।

मनुष्य के पास सुख के बाद दुःख और दुःख के बाद सुख क्रमशः आते रहते हैं- ठीक वैसे ही, जैसे रथचक्र की नेमिके इधर-उधर अरें घूमते रहते हैं।

जातस्य नियतो मृत्युः पतनं च तथोन्नतेः।
विप्रयोगावसानस्तु संयोगः संचयः क्षयः।।

विज्ञाय न बुधाः शोकं न हर्षमुपयान्ति ये।
तेषामेवेतरे चेष्टां शिक्षन्तः सन्ति तादृशाः।।

जो जन्म ले चुका है, उसकी मृत्यु निश्चित है। जो ऊँचे चढ़ चुका है, उसका नीचे गिरना भी अवश्यमीावी है। संयोग अवसान वियोग में ही होता है और संग्रह हो जाने के बाद उसका क्षय होना भी निश्चित बात है। यह समझकर विद्वान पुरूष हर्ष और शोक के वशीभूत नहीं होते और दूसरे मनुष्य भी उन्हीं के आचरण से शिक्षा लेकर वैसे ही बनते हैं।

पाप के स्वीकार से पाप-नाश

मोहादधर्मं यः कृत्वा पुनः समयनुतप्यते। मनःसमाधिसंयुक्तो न स सेवेत दुष्कृतम्।।
यथा यथा मनस्तस्य दुष्कृतं कर्म गर्हति। तथा तथा शरीरं तु तेनाधर्मेण मुच्यते।।
यदि विप्राः कथयते विप्राणां धर्मवादिनाम्। ततोऽधर्मकृतात् क्षिप्रमपराधात् प्रमुच्यते।।
यथा यथा नरः सम्यगधर्ममनुभाषते। समाहितेन मनसा विमुश्चिति तथा तथा ।।

ब्राह्मणो! जो मोहवश अधर्म का आचरण कर लेने पर उसके लिये पुनः सच्चे हृदय से पश्चात्ताप करता और मन को एकाग्र रखता है, वह पाप का सेवन नही करता। ज्यों-ज्यों मनुष्य का मन पाप कर्म की निन्दा करता है, त्यों त्यों उसका शरीर उस अधर्म से दूर होता जाता है। यदि धर्मवादी ब्राह्मणों के सामने अपना पाप कह दिया जाय तो वह उस पापजनित अपराध से शीघ्र मुक्त हो जाता है। मनुष्य जैसे-जैसे अपने अधर्म की बात बारंबार प्रकट करता है, वैसे ही वैसे वह एकाग्रचित्त होकर अधर्म को छोड़ता जाता है।

संन्यासी का आचार

प्राणयात्रानिमित्तं च व्यंङ्गरे भुक्तवज्जने।
काले प्रशस्तवर्णानां भिक्षार्थी पर्यटेद् गृहान्।।
अलाभे न विषादी स्याल्लाभे नैव च हर्षयेत्।
प्राणयात्रिकमात्रः स्यान्मात्रासङ्गद्विनिर्गतः।।
अतिपूजितलाभांस्तु जुगुप्सेच्चैव सर्वतः।
अतिपूजितलाभैस्तु यतिर्मुक्तोऽपि बध्यते।।
कामः क्रोधस्तया दर्पो लोभमोहादयश्च ये।
तांस्तु दोषान् परित्यज्य परिव्राण निर्ममो भवेत्।।

जीवन-निर्वाह के लिये वह उच्च वर्णवाले मनुष्यों के घर पर भिक्षा के लिये जाय-वह भी ऐसे समय में जब कि रसोई की आग बुझ गयी हो और घर के सब लोग खा पी चुके हों। भिक्षा न मिलने पर खेद और मिलने पर हर्ष न माने। भिक्षा उतनी ही ले, जिससे प्राणयात्रा होती रहे। विषयासक्ति से यह नितान्त दूर रहे। अधिक आदर-सत्कार की प्राप्ति को घृणा की दृष्टि से देखे, क्योंकि अधिक आदर-सत्कार मिलने पर संन्यासी अन्य बन्धनों से मुक्त होने भी बँध जाता है। काम, क्रोध, दर्प, लोभ और मोह आदि जितने दोष है, उन सबका त्याग करके संन्यासी ममता रहित हो सर्वत्र विचरता रहे।

कलियुग की प्रधानता में क्या होता है?

यदा यदा हि पाखण्डवृत्तिरत्रोपलक्ष्यते। तदा तदा कलेर्वृद्धिरनुमेया विचक्षणैः।।
यदा यदा सतां हानिर्वेदमार्गानुसारिणाम्। तदा तदा कलेर्वृद्धिरनुमेया विचक्षणैः।।
प्रारम्भश्चावसीदन्ति यदा धर्मकृतां नृणाम्। तदानुमेयं प्राधान्यं कलेर्विप्रा विचक्षणैः।।

ब्राह्मणो! जब-जब इस जगत् में पाखण्ड-वृत्ति दृष्टिगोचर होने लगे, तब तब विद्वान पुरूषों को कलियुग की वृद्धि का अनुमान करना चाहिए। जब जब वैदिक मार्ग का अनुसरण करने वाले साधु पुरूषों की हानि हो, तब तब बुद्धिमान पुरूषों को कलियुग की वृद्धि का अनुमान करना चाहिये। जब धर्मात्मा मनुष्यों के आरम्भ किये हुए शिथिल हो जॉय, तब उसमें विद्वानों को कलियुग की प्रधानता का अनुमान करना चाहिये।

यम-नियम

सत्यं क्षमाऽऽर्जवं ध्यानमानृशंस्यमहिंसनम् ।। दमः प्रसादो माधुर्य मृदुतेति यमा दश।
शौचं स्नानं तपो दानं मौनेज्याध्ययनं व्रतम्।। उपोषणोपस्थदण्डौ दशैते नियमाः स्मृताः।।

सत्य, क्षमा, सरलता, ध्यान, क्रूरता का अभाव, हिंसा का सर्वथा त्याग, मन और इन्द्रियों का संयम, सदा प्रसन्न रहना, मधुर बर्ताव करना और सबके प्रति कोमल भाव रखना-ये दस 'यम' कहे गये हैं। शौच, स्नान, तप, दान, मौन, यज्ञ, स्वाध्याय, व्रत, उपवास और उपस्थ-इन्द्रिय का दमन- ये दस 'नियम' बताये गये हैं।

सत्य

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मों विधीयते।।

सत्य बोले, प्रिय बोले, अप्रिय सत्य कभी न बोले, प्रिय भी असत्य हो तो न बोले। यह धर्म वेद-शास्त्रों द्वारा विहित हैं।

....।
सत्यपूतां वदेद् वाणीं मनः पूतं समाचरेत।।

सत्य से पवित्र हुई वाणी बोले तथा मन से जो पवित्र जान पड़े, उसी का आचरण करें।

दान का फल

भूप्रदो मण्डलाधीशः सर्वत्र सुखितोऽन्नदः।।
तेयदाता सुरूपः स्यात् पुष्टश्चान्नप्रदो भवेत्।
प्रदीपदो निर्मलाक्षो गोदातार्य्मलोकभाक्।।
स्वर्ण दाता च दीर्घायुस्तिलदः स्याश्च सुप्रजः।
वेश्मदोऽत्युश्चसौधेशो वस्त्रदश्चन्द्रलोकभाक्।।
हयप्रदो दिव्यदेहो लक्ष्मीवान् वृषप्रदः।
सुभार्यः शिविकादाता सुपर्य्ङ्कप्रदोऽपि च।।
श्रद्धया प्रतिगृह्णाति श्रद्धया यः प्रयच्छति।
स्वर्गिणी तावुभौ स्यातां पततोऽश्रद्धया त्वधः।।

भूमिदान करनेवाला मण्डलेश्वर होता है, अन्नदाता सर्वत्र सुखी होता है और जल देने वाला सुन्दर रूप पाता है। भोजन देने वाला हृष्ट-पुष्ट होता है। दीप देनेवाला निर्मल नेत्र से युक्त होता है। गोदान देने वाला सूर्य लोक का भागी होता है, सुवर्ण देने वाला दीर्घायु और तिल देने वाला उत्तम प्रजा से युक्त होता है। घर देने वाला बहुत ऊँचे महलों का मालिक होता है। वस्त्र देने वाला चन्द्रलोक में जाता है।घोड़ा देने वाला दिव्य शरीर से युक्त होता है। बैल देने वाला लक्ष्मीवान् होता है। पालकी देने वाला सुन्दर स्त्री पाता है। उत्तम पलंग देने वाले को भी यही फल मिलता है। जो श्रद्धापूर्वक दान देता और श्रद्धापूर्वक ग्रहण करता है, वे दोनों स्वर्गलोक के अधिकारी होते हैं तथा अश्रद्धा से दोनों का अधःपतन होता है।

पाप और उसका फल।

अनृतात् पारदार्यश्च तथाभक्ष्यस्य भक्षणात्।
अगोत्रधर्माचरणात् क्षिप्रं नश्यति वैं कुलम्।।

असत्य-भाषण, परस्त्रीसङ्ग, अभक्ष्यभक्षण तथा अपने कुलधर्म के विरूद्ध आचरण करने से कुल का शीघ्र ही नाश हो जाता है।

न कुर्याच्छुष्कवैराणि विवादं न च पैशुनम् ।
परेक्षेत्रे गां चरन्तीं ना चक्षीत च कहिंचित्।।
न संवसेत्सूचकेन न कं वैं मर्मणि स्पृशेत्।
....।।

अकारण बैर न करे, विवाद से दूर रहे, किसी की चुगली न करे, दूसरे के खेत में चरती हुई गौका समाचार कदापि न कहे। चुगलखोर के साथ न रहे, किसी को चुभने वाली बात न कहे।

निन्दा न करे, मिथ्या कलंक न लगावे

न चात्मानं प्रशंसेद्वा परनिन्दां च वर्जयेत्।
वेदनिन्दां देवनिन्दां प्रयत्नेन विवर्जयेत्।।

अपनी प्रशंसा न करे तथा दूसरों की निन्दा का त्याग कर दे। वेद निन्दा और देवनिन्दा का यत्नपूर्वक त्याग करे।

निन्दयेद्वा गुरूं देवं वेदं वा सोपवृंहणम्।
कल्पकोटिशतं साग्रं रौरवे पच्यते नरः।।
तूष्णीमासीत निन्दायां न ब्रूयात् किंचिदुत्तरम्।
कर्णौ पिधाय गन्तव्यं न चैनमवलोकयेत्।।
....
विवादं सुजनैः सार्धं न कुर्याद्वै कदाचन।।
न पापं पापिनां ब्रूयादपापं वा द्विजोत्तमाः।
....
नृणां मिथ्याभिशस्तानां पतन्त्यश्रुणि रोदनात्।
तानि पुत्रान् पशून् घ्नन्ति तेषां मिथ्याभिशंसिनाम्।।
ब्रह्महत्यासुरापाने स्तेये गुर्वङ्गनागम।
दृष्टं वै शोधनं वृद्वैर्नास्ति मिथ्याभिशंसिनि।।

जो गुरू, देवता, वेद अथवा उसका विस्तार करने वाले इतिहास-पुराण की निन्दा करता है, यह मनुष्य सौ करोड़ कल्प से अधिक काल तक रौरव नरक में पकाया जाता है। जहाँ इनकी निन्दा होती हो, वहाँ चुप रहे, कुछ भी उत्तर न दे। कान बंद करके वहाँ से चला जाय। निन्दा करने वाले की ओर दृष्टिपात न करे। विद्वान् पुरूष दूसरों की निन्दा न करे। अच्छे पुरूषों के साथ कभी विवाद न करे, पापियों के पाप की चर्चा न करे। जिनपर झूँठा कलंक लगाया जाता है,उन मनुष्यों के रोने से जो आँसू गिरते हैं, वे मिथ्या कलंक लगाने वालों के पुत्रों और पशुओं का विनाश कर डालते हैं। ब्रह्महत्या, सुरापान, चोरी और गुरूपत्नीगमन आदि पापों से शुद्ध होने का उपाय वृद्ध पुरूषों ने देखा है, किंतु मिथ्या कलंक लगाने वाले मनुष्य की शुद्धि का कोई उपाय नहीं देखा गया है।

माता-पिता की सेवा

पित्रोरर्चाथ पत्युश्र साम्यं सर्वजनेषु च। मित्राद्रोहो विष्णुभक्तिरेते पंच महामखा:।।
प्राक पित्रोरर्चया विप्रा यद्दर्म साधयेत्रर:। न तत्क्रतुशतैरेव तीर्थयात्रादिभिर्भुवि।।
पिता धर्म: पिता स्वर्ग: पिता हि परमं तप:। पितरो यस्य तृप्यन्ति सेवया च गुणेन च।
तस्य भागीरथीस्नानमहन्यहनि वर्तते।। सर्वतीर्थमयी माता सर्वदेवमय: पिता।
मातरं पितरं तस्मात् सर्वयत्नेन पूजयेत्।। मातरं पितरं चैव यस्तु कुर्यात् प्रदक्षिणम्।
प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा।। जानुनी च करौ यस्य पित्रो: प्रणमत: शिर:।
निपतन्ति पृथिव्यां च सोऽक्षयं लभते दिवम्।।तयोश्ररणयोर्थावद्रजश्रिहं तु मस्तके।
प्रतीके च विलग्रानि तावत्पूत: सुतस्तयो:।। पादारविन्दाश्च जलं य: पित्रो: पिबते सुत:।
तस्य पापं क्षयं याति जन्मकोटिशतार्जितम्।।धन्योऽसौ मानवो लोके ....
.... पितरौ लयेद्यस्तु वचोभि: पुरूषाधम:।
निरये च वसेत्तावद्यावदाभूतसम्प्लवम्।। रोगिणं चापि वृद्धं च पितरं वृत्तिकर्शितम्।
विकलं नेत्रकर्णाभ्यां त्यक्तवा गच्छेश्च रौरवम्।।

माता-पिता की पूजा, पति की सेवा, सबके प्रति समान भाव, मित्रों से द्रोह न करना और भगवान् श्रीविष्णुका भजन करना- ये पॉच महायज्ञ हैं। ब्राह्मणो! पहले माता-पिता की पूजा करके मनुष्य जिस धर्म का साधन करता है, वह इस पृथ्वी पर सैकड़ों यज्ञों तथा तीर्थयात्रा आदि के द्वारा भी दुर्लभ है। पिता धर्म है, पिता स्वर्ग है और पिता ही सर्वोत्कृष्ट तपस्या है। पिता के प्रसन्न हो जाने पर सम्पूर्ण देवता प्रसन्न हो जाते हैं।जिसकी सेवा और सदुणों से पिता-माता संतुष्ट रहते हैं, उस पुत्र को प्रतिदिन गंगास्नान का फल मिलता है। माता सर्वतीर्थमयी है और पिता सम्पूर्ण देवताओं का स्वरूप है, इसलिए सब प्रकार से यत्नपूर्वक माता-पिता का पूजन करना चाहिए। जो माता-पिता की प्रदक्षिणा करता है, उसके द्वारा सातों द्वीपों से युक्त समूची पृथ्वी की परिक्रमा हो जाती है। माता पिता को प्रणाम करते समय जिसके हाथ, घुटने और मस्तक पृथ्वी पर टिकते हैं, वह अक्षय स्वर्ग को प्राप्त होता है। जब तक माता-पिता के चरणों की रज पुत्र के मस्तक और शरीर में लगती रहती है, तभी तक वह शुद्ध रहता है। जो पुत्र माता-पिता के चरण कमलों का जल पीता है, उसके करोड़ों जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं। वह मनुष्य संसार में धन्य है। जो नीच पुरूष माता-पिता की आज्ञा का उल्लंघन करता है, वह महाप्रलयपर्यन्त नरक में निवास करता है। जो रोगी, वृद्ध, जीविका से रहित, अन्धे और बहरे पिता को त्यागकर चला जाता है, वह रौरव नरक में पड़ता है।

गोचर भूमि

तथैव गोप्रचारं तु दत्वा स्वर्गान्न हीयते। या गतिर्गोप्रदस्यैव ध्रुवं तस्य भविष्यति।।
गोप्रचारं यथाशक्ति यो वै त्यजति हेतुना। दिने दिने ब्रह्मभोज्यं पुण्यं तस्य शताधिकम्।।
.... यश्छिनत्ति द्रुमं पुण्यं गोप्रचारं छिनत्यपि।।
तस्यैकविंशत् पुरूष: पच्यन्ते रौरवेषु च। गोचारघ्नं ग्रामगोप: शक्तो ज्ञात्वा तु दण्डयेत्।।

जो गोचर-भूमि छोड़ता है, वह कभी स्वर्ग से नीचे नहीं गिरता। गोदान करने वाले की जो गति होती है, वही उसकी भी होती है। जो मनुष्य यथाशक्ति गोचरभूमि छोड़ता है, उसे प्रतिदिन सौसे भी अधिक ब्राह्मणों को भोजन कराने का पुण्य होता है। जो पवित्र वृक्ष और गोचरभूमि का उच्छेद करता है, उसकी इक्कीस पीढ़ियॉ रौरव नरक में पकायी जाती

हैं। गाँव के गोपालक को चाहिये कि गोचरभूमि को नष्ट करने वाले मनुष्य क पता लगाकर उसे दण्ड दें।

गङ्गाजी की महिमा

गतिं चिन्तयतां विप्रास्तूर्ण सामान्यजन्मनाम्। स्त्रीपुंसामीक्षणाद्यस्माद्गङ्गा पापं व्यपोहति।।
गङ्गेति स्मरणादेव क्षयं याति च पातकम्। कीर्तनादतिपापानि दर्शनाद्गुरूकल्मषम्।।
स्नानात् पानश्च जाह्वव्यां पितृणां तर्पणात्तया। महापातकवृन्दानि क्षयं यान्ति दिने दिने।।
अग्निना दह्यते तूलं तृणं शुष्कं क्षणाद् यथा। तथा गङ्गाजलस्पर्शात् पुंसां पापं दहेत् क्षणात्।।

अविलम्ब सद्गति का उपाय सोचने वाले सभी स्त्री पुरूषों के लिये गङ्गाजी ही एक ऐसा तीर्थ हैं, जिसके दर्शन मात्र से सारा पाप नष्ट हो जाता है। गङ्गाजी के नाम का स्मरण करने मात्र से पातक, कीर्तन से अतिपातक और दर्शन से मार्ग भारी पाप (महापातक) भी नष्ट हो जाते हैं। गङ्गाजी में स्नान, जलपान और पितरों का तर्पण करेन से महापातकों की राशि का प्रतिदिन क्षय होता रहता है। जैसे अग्रिका संसर्ग होने से रूई और सूखे तिनके क्षण भर में भस्म हो जाते हैं, उसी प्रकार गङ्गाजी अपने जल का स्पर्श होने पर मनुष्यों के सारे पाप एक ही क्षण में दग्ध कर देती हैं।

गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूययाद् योजनानां शतैरपि।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति।।
अन्धाश्च पङ्गवस्ते च वृथाभवसमुद्रवाः।
....।।

जो सैकड़ों योजन दूर से भी गंगा-गंगा करता है वह सब पापों से मुक्त हो श्रीविष्णुलोक को प्राप्त होता है। जो मनुष्य कभी गंगाजी में स्नान के लिये नही गये हैं, वे अन्धे और पंगु के समान हैं। तथा उनका जन्म निरर्थक है।

कौन मनुष्य क्या है?

.... । पूति गन्धं ततोऽमेर्ध्य वर्जनीयं प्रकीर्तितम्।।
पूर्ववद्वक्षणे प्रीतः अद्य पापं करोति च। स्तेयशीलो निशाचारी बुधैर्ज्ञेयः स वञ्चकः।।
अबुधः सर्वकार्येषु अज्ञातः सर्वकर्मसु। समयाचारहीनस्तु पशुरेव स बालिशः।।
.... । हिंस्त्रो ज्ञातिजनोद्वेगी रते युद्धे च कातरः।।
विघसादिप्रियो नित्यं नरः श्रा कीर्तितो बुधैः। प्रकृत्या चपलो नित्यं सदा भोजनचंचलः।
प्लवगः काननप्रीतो नरः शाखामृगो भुवि। सूचको भाषया बुद्धया स्वजनेऽन्यजनेषु च।।
उद्वेगजनकत्वाश्च स पुमानुरगः स्मृतः। बलवान् क्रान्तशीलश्च सततं वानपत्रप्।।
पूतिमांसप्रियो भोगी नृसिंहः समुदाहृतः। तत्स्वनादेव सीदन्ति भीता अन्ये वृकादयः।।
द्विरदादिनरा ये च ज्ञायन्तेऽदूरदर्शिनः। एवमादिक्रमेणैव विजानीयान्नरेषु च।।

जो मनुष्य अपवित्र एवं दुर्गन्धयुक्त पदार्थों के भक्षण में आनन्द मानता है, बराबर पाप करता है और रात में घूम-घूमकर चोरी करता रहता है, उसे विद्वान पुरूषों को वञ्चक समझना चाहिये। जो सम्पूर्ण कर्तव्य कार्यों से अनभिज्ञ तथा सब प्रकार के कर्मों से अपरिचित हैं, जिसे समयोचित सदाचार का ज्ञान नही है, वह मूर्ख वास्तव में पशु ही है। जो हिंसक सजातीय मनुष्यों को उद्वेजित करने वाला, कलह-प्रिय, कायर और उच्छिष्ट भोजन का प्रेमी है, वह मनुष्य कुत्ता कहा गया है। जो स्वभाव से ही चंचल, भोजन के लिये सदा लालायित रहने वाला, कूद-कूदकर चलने वाला और जंगल में रहने का प्रेमी है, उस मनुष्य को इस पृथ्वी पर बंदर समझना चाहिए। जो वाणी और बुद्धि द्वारा अपने

कुटुम्बियों तथा दूसरे लोगों की भी चुगली खाता और सबके लिये उद्वेगजनक होता है, वह पुरूष सर्प के समान माना गया है। जो बलवान्, आक्रमण करने वाला, नितान्त निर्लज्ज, दुर्गन्धयुक्त मांस का प्रेमी और भोगासक्त होता है, वह मनुष्यों में सिंह कहा गया है। उसकी आवाज सुनते ही दूसरे भेड़िये आदि की श्रेणी में गिने जाने वाले लोग भयभीत और दुखी हो जाते हैं। जिनकी दृष्टि दूरतक नही जाती, ऐसे लोग हाथी माने जाते हैं। इसी क्रम से मनुष्यों में अन्य पशुओं का विवेक कर लेना चाहिये।

मनुष्य रूप में देवता

सुराणां लक्षणं ब्रूमो नररूपव्यवस्थितम्। द्विजदेवातिथीनां च गुरूसाधुतपस्विनाम्।।
पूजातपोरतो नित्यं धर्मशास्त्रेषु नीतिषु। क्षमाशीलो जितक्रोधः सत्यवादी जितेन्द्रियः।।
अलुब्धः प्रियवाक शान्तो धर्मशास्त्रार्थसम्प्रियः। दयालुर्दयितो लोके रूपवान् मधुरस्वरः।।
वागीशः सर्वकार्येषु गुणी दक्षो महाबलः। साक्षरश्चापि विद्वांश्च गीतनृत्यार्थतत्वंवित्।।
आत्मविद्यादिकार्येषु सर्वतन्त्रीस्वरेषु च। हविष्येषु च सर्वेषु गव्येषु व निरामिषे।।
सम्प्रीतश्चातिथौ दाने पर्वनीतिषु कर्मसु। स्नानदानादिभिः कार्यैर्व्रतैर्यज्ञैः सुरार्चनैः।।
कालो गच्छति पाठैश्च न कीबं वासरं भवेत्। अयमेव मनुष्याणां सदाचारो निरन्तरम्।।

अब हम नररूप में स्थित देवताओं का लक्षण बतलाते हैं। जो द्विज, देवता, अतिथि, गुरू, साधु और तपस्वियों के पूजन में संलग्न रहने वाला, नित्य तपस्यापरायण, धर्म एवं नीति में स्थित, क्षमाशील, क्रोधजयी, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, लोभप्रिय, मिष्टभाषी, वाणीपर अधिकार रखने वाला,, सब कार्यों में दक्ष, गुणवान् महाबली, साक्षर, विद्वान,आत्मविद्या आदि के लिए उपयोगी कार्यों में संलग्न, घी और गाय के दूध-दही आदि में तथा निरामिष भोजन में रूचि रखने वाला, अतिथि को दान देने और पार्वण आदि कर्मो में प्रवृत्त रहने वाला है, जिसका समय स्नान-दान आदि शुभ कर्म, व्रत, यज्ञ, देवपूजन तथा स्वाध्याय आदि में ही व्यतीत होता है, कोई भी दिन व्यर्थ नही जाने पाता, वही मनुष्य देवता है।

सबका उद्धारक

यो दान्तो विगुणैर्मुक्तो नीतिशास्त्रार्थतत्वगः। एतैश्च विविधैः प्रीतः स्व भवेत्सुरलक्षणः।।
पुराणागमकर्माणि नाकेष्वत्र च वै द्विजः। स्वयमाचरते पुण्यं स धरोद्धरणक्षमः।।
यः शैवो वैष्णवश्चाण्डः सौरो गाणप एव च। तारयित्वा पितृन् सर्वान् स धरोद्धरणक्षमः।।
विशेषे वैष्णवं दृष्टा प्रीयते पूजयेन्न तम्। विमुक्तः सर्वपामेभ्यः स धरोद्धरणक्षमः।।
षट्कर्मनिरतो विप्रः सर्वयज्ञरतः सदा। धर्माख्यानप्रियो नित्यं स धरोद्धरणक्षमः।।

जो मनुष्य जितेन्द्रिय, दुर्गुणों से मुक्त तथा नीतिशास्त्र के तत्व को जानने वाला है और ऐसे ही नाना प्रकार के उत्तम गुणों से संतुष्ट दिखाई देता है, वह देवस्वरूप है। स्वर्ग का निवासी हो या मनुष्य लोक का-जो पुराण और तन्त्र में बताये हुए पुण्य कर्मों का स्वयं आचरण करता है, यही इस पृथ्वी का उद्धार करने में समर्थ है, वह समस्त पितरों को तारकर इस पृथ्वी का उद्धार करने में समर्थ है। विशेषतः जो वैष्णव को देखकर प्रसन्न होता और पूजा करता है, वह समस्त पापों से मुक्त हो इस भूतल का उद्धार कर सकता है। जो ब्राह्मण यजन-याजन आदि छः कर्मों में संलग्न, सब प्रकार के यशों में प्रवृत्त रहने वाला और सदा धार्मिक उपाख्यान सुनाने का प्रेमी है, वह भी इस पृथ्वी का उद्धार करने में समर्थ है।

सबका नाशक

विश्वासघातिनो ये च कृतघ्ना व्रतलोपिनः। द्विजदेवेषु विद्विष्टाः शातयन्ते धरां नराः।।
पितरौ ये न पुष्णन्ति स्त्रियों गुरूजनाक्षिशून्। देवद्विजनृपाणां च वसु ये च हरन्ति वै।।

अपुनर्भवशास्त्रे च शातयन्ति धरां नराः। ये च मद्यरताः पापा द्यूतकर्मरतास्तथा।।
पाषण्डपतितालापाः शातयन्ति धरां नराः। महापातकिनो ये च अतिपातकिनस्तथा।।
घात का बहुजन्तूनां शातयन्ति धरां नराः।सुकर्मरहिता ये च नित्यो द्वेगाश्च निर्भयाः।।
स्मृतिशास्त्रर्थ कोद्विग्राः शातयन्ति धरां नराः। निजवृत्तिं परित्यज्य कुर्वन्ति चाधमां च ये।।
गुरूनिन्दारता द्वेषाच्छातयन्ति धरां नराः। दातारं ये रोधयन्ति पात के प्रेरयन्ति च।।
दीनानाथान् पीडयन्ति शातयन्ति धरां नराः। एते चान्धे च बहवः पापकर्मकृतो नराः।।
पुरूषान् पातयित्वा तु शातयन्ति धरां नराः। ....

जो लोग विश्वासघाती, कृतघ्न, व्रतका उलंघन करने वाले तथा ब्राह्मण और देवताओं के द्वेषी हैं वे मनुष्य इस पृथ्वी का नाश कर डालते हैं। जो माता-पिता, स्त्री, गुरूजन और बालकों का पोषण नहीं करते, देवता, ब्राह्मण और राजाओं का धन हर लेते हैं तथा जो मोक्षशास्त्र में श्रद्धा नहीं रखते, वे मनुष्य भी इस पृथ्वी का नाश करते हैं। जो पापी मदिरा पीने और जुआँ खेलने में आसक्त रहते और पाखण्डियों तथा पतितों से वार्तालाप करते हैं, जो महापात की और अतिपात की है, जिनके द्वारा बहुत से जीव जन्तु मारे जाते हैं, वे लोग इस भूतल का विनाश करने वाले हैं। जो सत्कर्म से रहित, सदा दूसरों को उद्विग्र करने वाले और निर्भय हैं, स्मृतियों तथा धर्म शास्त्रों में बताये हुए शुभकर्मों का नाम सुनकर जिनके हृदय में उद्वेग होता है, जो अपनी उत्तम जीविका छोड़कर नीच वृत्ति का आश्रय लेते हैं तथा द्वेष वश गुरूजनों की निन्दा में प्रवृत्ति होते हैं, वे मनुष्य इस भूलोक का नाश कर डालते हैं। जो दाता को दान से रोकते और पापकर्म की ओर प्रेरित करते हैं तथा जो दीनों और अनाथों को पीड़ा पहुंचाते हैं, वे लोग इस भूतल का सत्यानाश करते हैं। ये तथा और भी बहुत से पापी मनुष्य हैं, जो दूसरे लोगों को पापों में ढकेलकर इस पृथ्वी का सर्वनाश करते हैं।

मुनि शुकदेव

श्रीभगवान् के नाम-रूप-लीला धामादि का माहात्म्य

देहापत्यकलत्रादिप्वात्मसैन्येष्वसत्स्वपि।
तेषां प्रमत्तो निधनं पश्यन्नपि न पश्यति।।
तस्माद् भारत सर्वात्मा
भगवान् हरिरीश्वरः।
श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च
स्मर्पव्यश्रेच्छताभयम्।।

संसार में जिन्हें अपना अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्धी कहा जाता है, वे शरीर, पुत्र, स्त्री आदि कुछ नही हैं, असत् हैं, परंतु जीव उनके मोह में ऐसा पागल-सा हो जाता है कि रात-दिन उनको मृत्यु का ग्रास होते देखकर भी चेतना नही। इसीलिये परीक्षित्! जे अभय पद को प्राप्त करना चाहता है, उसे तो सर्वात्मा, सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्ण की ही लीलाओं का श्रवण, कीर्तन और स्मरण करना चाहिये।

न ह्यतोऽन्यः शिवः पन्था विशतः संसृताविह।
वसुदेवे भगवति भक्तियोगो यतो भवेत्।।

संसार चक्र में पड़े हुए मनुष्य के लिए, जिस साधन के द्वारा उसे भगवान् श्री कृष्ण की अनन्य प्रेममयी भक्ति प्राप्त हो जाय, उसके अतिरिक्त और कोई भी कल्याणकारी मार्ग नही हैं।

पिबन्ति ये भगवत आत्मनः सतां, कथामृतं श्रवणपुटेषु सम्भृतम्।
पुनन्ति ते विषयविदूषिताशयं , ब्रजन्ति तश्चरणसरोरूहान्तिकम्।।

राजन! संत पुरूष आत्मस्वरूप भगवान् की कथा का अमृत बॉटते ही रहते हैं, जो अपने कान के दोनो में भरकर उसका पान करते हैं, उनके हृदय से विषयों क विषैला प्रभाव जाता रहता है, वह शुद्ध हो जाता है और वे भगवान् श्रीकृष्ण के चरणकमलों की संनिधिप्राप्त कर लेते हैं।

वासुदेवकथा प्रश्नः पुरूषांस्त्रीन् पुनाति हि।
वक्तारं पृच्दकं श्रोतृं स्तत्पादसलिलं यथा।।

भगवान् श्रीकृष्ण की कथा के सम्बन्ध में प्रश्न करने से ही वक्ता, प्रश्नकर्ता और श्रोता तीनों ही पवित्र हो जाते हैं- जैसे गंगाजी का जल या भगवान् शालग्राम का चरणामृत सभी को पवित्र कर देता है।

यस्तत्तमश्लोकगुणानुवादः, संगीयतेऽभीक्ष्णममंगलघ्नः।
तमेव नित्यं श्रृणुयादभीक्ष्णं, कृष्णेऽमलां भक्तिमभीप्समानः।।

भगवान् श्रीकृष्ण का गुणानुवाद समस्त अमंगलों का नाश करने वाला है, बड़े-बड़े महात्मा उसी का गान करते रहते हैं। जो भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों में अनन्य प्रेममयी भक्ति की लालसा रखता हो, उसे नित्य-निरन्तर भगवान् के दिव्य गुणानुवाद का ही श्रवण करते रहना चाहिये।

यत्रामधेयं म्रियमाण आतुरः, पतन् स्खलन् यवा विवशो गृणन् पुमान्।
विमुक्तकर्मार्गल उत्तमां गतिं, प्राप्नोति यक्ष्यन्ति न तं कलौ जनाः।।

मनुष्य मरने के समय आतुरता की स्थिति में अथवा गिरते या फिसलते समय विवश होकर भी यदि भगवान् के किसी एक नाम का उच्चारण कर ले तो उसके सारे कर्मबन्धन छिन्नभिन्न हो जाते हैं और उसे उत्तम से उत्तम गति प्राप्त होती है। परंतु हाय रे कलियुग! कलियुग से प्रभावित होकर लोग उन भगवान् की आराधना से भी विमुख हो जाते हैं।

पुंसां कलिकृतान् दोषान् द्रव्यदेशात्मसम्भवान्।
सर्वान् हरति चित्तस्थो भगवान् पुरूषोत्तमः।।

कलियुग के अनेकों दोष हैं। कुल वस्तुएँ दूषित हो जाती हैं, स्थानों में भी दोष की प्रधानता हो जाती है। सब दोषों का मूल स्त्रोत तो अन्तःकरण है ही, परंततु जब पुरूषोत्तम भगवान हृदय में आ विराजते हैं, तब उनकी संनिधिमात्र से ही सब के सब दोष नष्ट हो जाते हैं।

श्रुतः संकीर्तितो ध्यातः पूजितश्राद्दतोऽपि वा।
नृणां धुनोति भगवान् हृत्स्थो जन्मायुताशुभम्।।

भगवान् के रूप, गुण, लीला, धाम और नाम के श्रवण, संकीर्तन, ध्यान, पूजन और आदर से वे मनुष्य के हृदय में आकर विराजमान हो जाते हैं और एक दो जन्म के पापों की तो बात ही क्या, हजारों जन्मों के पाप के ढेर के ढेर भी क्षण भर में भस्म कर देते हैं।

यथा हेम्रि स्थितो वह्निर्दुर्वर्णं हन्ति धातुजम्।
एवमात्ममतो विष्णुर्योगिनामशुभाशयम्।।

जैसे सोने के साथ संयुक्त होकर अग्नि उसके धातु सम्बन्धी मलिनता आदि दोषों को नष्ट कर देती है,वैसे ही साधकों के हृदय में स्थित होकर भगवान् विष्णु उनके अशुभ संस्कारों को सदा के लिये मिटा देते हैं।

वद्यातपः प्राणनिरोधमैत्री
तीर्थाभिषेकव्रतदानजप्यैः।
नात्यन्तशुद्धिं लभतेऽन्तरात्मा
यथा हृदिस्थे भगवत्यनन्ते।।

परीक्षित्! विद्या, तपस्या, प्राणायाम, समस्त प्राणियों के प्रति मित्र-भाव, तीर्थ-स्नाान, व्रत, दान और जप आदि किसी भी साधन से मनुष्य के अन्तःकरण की वैसी वास्तविक शुद्धि नही होती, जैसी शुद्धि भगवान् पुरूषोत्तम के हृदय में विराजमान हो जाने पर होती है।

म्रियमाणैरभिध्येयो भगवान् परमेश्वरः। आत्मभावं नयत्यंग सर्वात्मा सर्वसंश्रयः।।
कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः। कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसंगः परं व्रजेत्।।
कृते यद् ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः। द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात्।।

जो लोग मृत्यु के निकट पहुँच रहे हैं, उन्हें सब प्रकार से परम ऐश्वर्यशाली भगवान् ही ध्यान करना चाहिये। प्यारे परीक्षित्! सबके परम आश्रय और सर्वात्मा भगवान् अपना ध्यान करने वाले को अपने स्वरूप में लीन कर लेते हैं, उसे अपना स्वरूप बना लेते हैं। परीक्षित्! यों तो कलियुग दोषों का खजाना है, परंतु इसमें एक बहुत बड़ा गुण है। वह गुण यही है कि कलयुग में केवल भगवान् श्रीकृष्ण का संकीर्तन करने से ही सारी आसक्तियाँ छूट जाती है और परमात्मा की प्राप्ति हो जाती है। सत्ययुग में भगवान् का ध्यान करने से त्रेता में बड़े बड़े यज्ञों द्वारा उनकी आराधना करने से और द्वापर में विधिपूर्वक उनकी पूजा सेवा से जो फल मिलता है, वह कलियुग में केवल भगवन्नाम का कीर्तन करने से ही प्राप्त हो जाता है।

संसारसिन्धुमतिदुस्तरमुत्तितीर्षो
र्नान्यः प्लवो भगवतः पुरूषोत्तमस्य।
लीलाकथारसनिषेवणमन्तरेण
पुंसो भवेद् विविधदुःखदवार्दितस्य।।

जो लोग अत्यन्त दुस्तर संसार-सागर से पार जाना चाहते हैं, अथवा जो लोग अनेकों प्रकार के दुःख दावानल से दग्ध हो रहे हैं, उनके लिये पुरूषोत्तम भगवान् की लीला-कथा रूप रस के सेवन के अतिरिक्त और कोई साधन, कोई नौका नही है। ये केवल लीला-रसायन का सेवन करके ही अपना मनोरथ सिद्ध कर सकते हैं।

आत्मा

स्नेहाधिष्ठानवर्त्यग्निसंयोगो यावदीयते। ततो दीपस्य दीपत्वमेवं देहकृतो भवः।।
रजः सत्वतमोवृत्या जायतेऽथ विनश्यति। न तत्रात्मा स्वयंज्योतियों व्यक्ताव्यक्तयोः परः।।
आकाश इव चाधारो ध्रुवोऽनन्तोपमस्ततः।।

जब तक तेल, तेल रखने का पात्र, बत्ती और आग का संयोग रहता है, तभी तक दीपक में दीपकपना है, वैसे ही जब तक आत्मा का कर्म, मन, शरीर और इनमें रहने वाले चैतन्याध्यास के साथ सम्बन्ध रहता है, तभी तक उसे जन्म-मृत्यु के चक्र संसार में भटकना पड़ता है और रजोगुण, सत्वगुण तथा तमोगुण की वृत्तियों से उसे उत्पन्न, स्थित एवं विनष्ट होना पड़ता है। परंतु जैसे दीपक के बुझ जाने से तत्वरूप तेज का विनाश नही

होता, वैसे ही संसार का नाश होने पर भी स्वयं प्रकाश आत्मा का नाश नही होता। क्योंकि वह कार्य और कारण, व्यक्त और अव्यक्त-सबसे परे हैं, वह आकाश के समान सबका आधार है, नित्य और निश्चल है, यह अनन्त है। सचमुच आत्मा की उपमा आत्मा ही है।

वैराग्य

सत्यां क्षितौ किं कशिपो: प्रयासै- र्बाहौ स्वसिद्धे ह्युपबर्हणै: किम्।
सत्यञ्जलौ किं पुरूधात्रपात्र्या दिग्वल्कलादौ सति किं दुकूलै:।।
चीराणि किं पथि न सन्ति दिशन्ति भिक्षां नैवाड्घ्रिपा: परभृत: सरितोऽप्यशुष्यन्।
रूद्धा गुहा: किमजितोऽवति नोपसन्नान् कस्माद् भजन्ति कवयो धनदुर्मदान्धान्।।
एवं स्वचित्ते स्वत एव सिद्ध आत्मा प्रियोऽर्थो भगवाननन्त:।
तं निर्वृतो नियतार्थो भजेत संसारहेतूपरमश्च यत्र।।

जब जमीन पर सोने से काम चल सकता है, तब पलंग के लिये प्रयत्नशील होने से क्या प्रयोजन। जब भुजाएँ अपने को भगवान् की कृपा से स्वयं ही मिली हुई हैं, तब तकिये की क्या आवश्यकता। जब अञ्जलिसे काम चल सकता है, तब बहुत से बर्तन क्यों बटोरे। वृक्ष की छाल पहनकर या वस्त्र हीन रहकर भी यदि जीवन धारण किया जा सकता है तो वस्त्रों की क्या आवश्यकता। पहनने को क्या रास्तों में चिथड़े नही है? भूँख लगने पर दूसरों के लिये ही शरीर धारण करने वाले वृक्ष क्या फल-फूल की भिक्षा नही देते? रहने के लिये क्या पहाड़ों की गुफाएँ बंद कर दी गयी हैं? अरे भाई! स्ब न सही, क्या भगवान् भी अपने शरणागतों की रक्षा नही करते? ऐसी स्थिति में बुद्धिमान लोग भी धन के नशें में चूर घमंडी धनियों की चापलूसी क्यों करते हैं? इस प्रकार विरक्त हो जाने पर अपने हृदय में नित्य विराजमान, स्वत:सिद्ध, आत्मस्वरूप, परम प्रियतम, परम सत्य जो अनन्त भगवान् हैं, बड़े प्रेम और आनन्द से दृढ़ निश्चय करके उन्ही का भजन करे, क्योंकि उनके भजन से जन्म मृत्यु के चक्कर में डालने वाले अज्ञान का नाश हो जाता है।

<u>महर्षि जैमिनि</u>

श्रद्धा की महत्ता

श्रद्धा धर्मसुता देवी पावनी विश्वभाविनी।।
सावित्री प्रसवित्री च
संसारार्णवतारिणी।
श्रद्धया ध्यायते धर्मो
विद्वद्भिश्चात्मवादिभि:।।
निष्किंचनास्तु मुनय: श्रद्धावन्तो दिवं गता:।

श्रद्धा देवी धर्म की पुत्री हैं, वे विश्व को पवित्र एवं अभ्युदयशील बनाने वाली हैं। इतना ही नही, वे सावित्री के समान, पावन, जगत् को उत्पन्न करने वाली तथा संसार सागर से उद्धार करने वाली हैं। आत्मवादी विद्वान श्रद्धा से ही धर्म का चिन्तन करते हैं। जिनके पास किसी भी वस्तु का संग्रह नही है, ऐसे अकिंचन मुनि श्रद्धालु होने के कारण ही दिव्य लोक को प्राप्त हुए।

नरक कौन जाते हैं?

ब्राह्मण्यं पुण्यमुत्सृज्य ये द्विजा लोभमोहिता:। कुकर्मण्युपजीवन्ति ते वै निरयगामिन:।।
ब्राह्मणेभ्य: प्रतिश्रुत्य न प्रयच्छन्ति ये धनम्। ब्रह्मस्वानां च हर्तारो नरा निरयगामिन:।।

ये परस्वापहर्तारः परदूषणसोत्सुकाः। परश्रिया प्रतप्यन्ते ते वै निरयगामिनः।।
प्राणिनां प्राणहिंसायां ये नरा निरताः सदा। परनिन्दारता ये च ते वै निरयगामिनः।।
कूपारामतडागानां प्रपानां च विदूषकाः। सरसां चैव भेत्तारो नरा निरयगामिनः।।
विपर्ययं ब्रजेद्यस्ताञ्शिशून्भृत्यातिथींस्ततः। उत्सत्रपितृदेवेज्यास्ते वै निरयगामिनः।।
प्रव्रज्यादूषका राजन् ये चैवाश्रमदूषकाः। सखीनां दूषकाश्चैव ते वै रियगामिनः।।

जो द्विज लोभ से मोहित हो पावन ब्राह्मणत्व का परित्याग करके कुकर्म से जीविका चलाते हैं, वे नरकगामी होते हैं। जो नास्तिक हैं, जिन्होंने धर्म की मर्यादा भंग की है, जो काम-भोग के लिये उत्कण्ठित, दाम्भिक और कृतघ्न हैं, जो ब्राह्मणों को धन देने की प्रतिज्ञा करके भी नही देते, चुगली खाते, अभिमान रखते और झूठ बोलते हैं, जिनकी बातें परस्पर विरूद्ध होती हैं, जो दूसरों का धन हड़प लेते, दूसरों पर कलंक लगाने के लिये उत्सुक रहते और परायी सम्पत्ति देखकर जलते हैं, वे नरक में जाते हैं। जो मनुष्य सदा प्राणियों के प्राण लेने में लगे रहते, परायी निन्दा में प्रवृत्त होते, कुँए, बगीचे, पोखरे और पौंसले को दूषित करते, सरोवरो को नष्ट-भ्रष्ट करते तथा शिशुओं, भृत्यों और अतिथियों को भोजन दिये बिना ही स्वयं भोजन कर लेते हैं, जिन्होने पितृयाग (श्राद्ध) और देवयाग (यज्ञ) का त्याग कर दिया है, जो संन्यास तथा अपने रहने के आश्रम को कलंकित करते हैं और मित्रों पर लाञ्छन लगाते हैं, वे सब के सब नरकगामी होते हैं।

स्वर्ग कौन जाते हैं?

हन्त ते कथयिष्यामि नरान् वै स्वर्गगामिनः। भोगिनः सर्वलोकस्य ये प्रोक्तास्तान्निबोध में।।
सत्येन तपसा ज्ञानध्यानेनाध्ययनेन वा। ये धर्ममनुवर्तन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः।।
ये च होमपरा ध्यानदेवतार्चनतत्पराः। आददाना महात्मानस्ते नराः स्वर्गगामिनः।।
शुचयः शुचिदेशे वा वासुदेवपरायणाः। भक्त्या च विष्णुमापत्रास्ते नराः स्वर्गगामिनः।।
मातापित्रोश्च शुश्रूषां ये कुर्वन्ति सदाऽऽदृताः। वर्जयन्ति दिवा स्वप्नं ते नराः स्वर्गगामिनः।।
सर्वहिंसानिवृत्ताश्च साधुसंगाश्च ये नराः। सर्वस्यापि हिते युक्तास्ते नराः स्वर्गगामिनः।।
शुश्रूषाभिः समायुक्ता गुरूणां मानदा नराः। प्रतिग्रहनिवृत्ताश्च ते नराः स्वर्गगामिनः।।
भयात्कामात्तयाऽऽक्रोशाद्दरिद्रान्पूर्वकर्मणः। न कुत्सन्ति च ये नूनं ते नराः स्वर्गगामिनः।।
सहस्त्रपरिवेष्टारस्तथैव च सहस्त्रदाः। दातारश्च सहस्त्राणां ते नराः स्वर्गगामिनः।।
आत्मस्वरूपभाजश्च यौवनस्थाः क्षमारताः। ये वै जितेन्द्रिया धीरास्ते नराः स्वर्गगामिनः।।
सुवर्णस्य प्रदातारो गवां भूमेश्च भारत। अत्रानां वाससां चैव पुरूषाः स्वर्गगामिनः।।
निवेशनानां वन्यानां नराणां च परंतप। स्वयमुत्पाद्य दातारः पुरूषाः स्वर्गगामिनः।।
द्विषतामपि ये दोषान्न वदन्ति कदाचन। कीर्तयन्ति गुणांश्चैव ते नराः स्वर्गगामिनः।।
दृष्ट्वा विज्ञान्प्रहृष्यन्ति प्रियं दत्वा वदन्ति च। त्यक्तदानफलेच्छाश्च ते नराः स्वर्गगामिनः।।
ये परेषां श्रियं दृष्टा न तप्यन्ति विभत्सराः। प्रहृष्टाश्चाभिनन्दन्ति ते नराः स्वर्गगामिनः।।
प्रवृत्तौ च निवृत्तौ च मुनिशास्त्रोक्तमेव च। आचरन्ति महात्मानस्ते नराः स्वर्गगामिनः।।
ये नराणां वचो वक्तुं न जानन्ति च विप्रियम्। प्रियवाक्येन विज्ञातास्ते नराः स्वर्गगामिनः।।
बापीकूपतडागानां प्रपानां चैव वेश्मनाम्। आरामाणां च कर्तारस्ते नराः स्वर्गगामिनः।।
असत्येष्वपि सत्या ये ऋजवोऽनार्जवेष्वपि। प्रवक्तारश्च दातारस्ते नराः स्वर्गगामिनः।।

अब मैं स्वर्ग जाने वाले पुरूषों का वर्णन करूँगा। जो मनुष्य सत्य, तपस्या, ज्ञान, ध्यान तथा स्वाध्याय के द्वारा धर्म का अनुसरण करते हैं, वे स्वर्गगामी होते हैं। जो प्रतिदिन हवन करते तथा भगवान् के ध्यान और देवताओं के पूजन में संलग्न रहते हैं, वे

महात्मा स्वर्गलोक के अतिथि होते हैं। जो बाहर भीतर से पवित्र रहते, पवित्र स्थान में निवास करते, भगवान् वासुदेव के भजन में लगे रहते तथा भक्ति पूर्वक श्रीविष्णु की शरण में जाते हैं, जो सदा आदरपूर्वक माता-पिता की सेवा करते और दिन में नही सोते, जो सब प्रकार की हिंसा से दूर रहते, साधुओं का संग करते और सबके हित में संलग्न रहते हैं वे मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं। जो गुरूजनों की सेवा में संलग्न, बड़ों को आदर देने वाले,दान न लेने वाले, भय से काम से तथा क्रोध से दरिद्रों के पिछले कर्मों की निन्दा न करने वाले, सहस्त्रों मनुष्यों को भोजन परोसने वाले, सहस्त्रों मुद्राओं का दान करने वाले तथा सहस्त्रों मनुष्यों को दान देने वाले हैं। वे पुरूष स्वर्गलोक को जाते हैं। जो युवावस्था में भी क्षमाशील और जितेन्द्रिय हैं, जिनमें वीरता भरी है, जो सुवर्ण, गौ, भूमि, अन्न और वस्त्र का दान करते हैं, जो स्वयं जंगली जानवरों तथा मनुष्यों के लिये घर बनाकर दान कर देते हैं,जो अपने से द्वेष रखने वालों के भी दोष कभी नही कहते, बल्कि उनके गुणों का ही वर्णन करते हैं जो विज्ञ पुरूषों को देखकर प्रसन्न होते, दान देकर प्रिय वचन बोलते तथा दान के फल की इच्छा का परित्याग कर देते हैं। तथा जो दूसरों की सम्पत्ति को देखकर ईर्ष्या से जलते तो हैं ही नही, उल्टे हर्षित होकर उनका अभिनन्दन करते हैं, वे मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं। जो पुरूष प्रवृत्ति मार्ग में तथा निवृत्ति मार्ग में भी मुनियों और शास्त्रों के कथनानुसार ही आचरण करते हैं, वे स्वर्गलोक के अतिथि होते हैं। जो मनुष्यों से कटुवचन बोलना नही जानते, जो प्रिय वचन बोलने के लिये प्रसिद्ध हैं, जिन्होने बाबली, कुँआ, सरोवर, पौंसला, धर्मशाला और बगीचे बनवाये हैं जो मिथ्यावादियों के लिये भी सम्पूर्ण बर्ताव करने वाले और कुटिल मनुष्यों के लिये भी सरल है वे दयालु तथा सदाचारी मनुष्य स्वर्गलोक के जाते हैं।

नरक और मुक्ति किसको मिलती है?

ततः परेषां प्रतिकूलमाचरन् प्रयाति घोरं नरकं सुदुःखदम्।
सदानुकूलस्य नरस्य जीविनः सुखावहा मुक्तिरदूरसंस्थिता।।

जो दूसरों के प्रतिकूल आचरण करता है, उसे अत्यन्त दुःखदायी घोर नरक में गिरना पड़ता है तथा जो सदा दूसरों के अनुकूल चलता है, उस मनुष्य के लिये सुखदायिनी मुक्ति दूर नही है।

मुनि सनत्सुजात

बारह दोष, तेरह नृशंसताएँ

क्रोधः कामो लोभमाहौ विधित्सा-
कृपासूये मानशोकौ स्पृहा च।
ईर्ष्या जुगुप्सा च मनुष्यदोषा
वर्ज्याः सदा द्वादशैते नराणाम् ।।
एकैकः पर्युपास्ते ह मनुष्यान् मनुजर्षभ।
लिप्समानोऽन्तरं तेषां मृगाणिमिव लुब्धकः।
विकत्थनः स्पृहयालुर्मनस्वी
विभ्रत्कोपं चपलोऽरक्षणश्च।
एतान्पापाः षण्नराः पापधर्मान्
प्रकुर्वते नो त्रसन्तः सुदुर्गे।।

सम्भोगसंविद् विषमोऽतिमानी
दत्तानुतापी कृपणो बलीयान्।
वर्गप्रशंसी वनितासु द्वेष्टा
एते परे सप्त नृशंसवर्गाः।।

काम, क्रोध, लोभ, मोह, असंतोष, निर्दयता, असूया, अभिमान, शोक, स्पृहा, ईर्ष्या और निन्दा-मनुष्यों में रहने वाले ये बारह दोष सदा ही त्याग देने योग्य है। नरश्रेष्ठ। जैसे ब्याधा मृगों को मारने का अवसर देखता हुआ उनकी टोह में लगा रहता है, उसी प्रकार इनमें से एक-एक दोष मनुष्यों का छिद्र देखकर उनपर आक्रमण करता है। अपनी बहुत बड़ाई करने वाले, लोलुप, अहंकारी, निरन्तर क्रोधी, चंचल और आश्रितों की रक्षा नीह करने वाले- ये छः प्रकार के मनुष्य पापी हैं। महान् संकट में पड़ने पर भी ये निडर होकर इन पाप-कर्मों का आचरण करते हैं। सम्भोगों में ही मन लगाने वाले, विषमता रखने वाले, अत्यन्त मानी, दान देकर पश्चाताप करने वाले, अत्यन्त कृपण और काम की प्रशंसा करने वाले तथा स्त्रियों के द्वेषी-ये सात और पहले के छः-कुल तेरह प्रकार के मनुष्य नृशंस-वर्ग (क्रूर-समुदाय) कहे गये हैं।

महर्षि वैशम्पायन

विविध उपदेश

मोहजालस्य योनिर्हि मूढैरेव समागमः। अहन्यहनि धर्मस्य योनिः साधुसमागमः।।

मूर्खों का संग ही मोह जाल की उत्पत्ति का कारण है तथा प्रतिदिन साधु पुरूषों का संग धर्म में प्रवृत्ति कराने वाला है।

येषां त्रीण्यवदातानि विद्या योनिश्च कर्म च।
तान् सेवेत्तैः समास्या हि शास्त्रेभ्योऽपि गरीयसी।।

जिनकी विद्या, कुल और कर्म-ये तीनों शुद्ध हो, उन साधु पुरूषों की सेवा में रहे। उनके साथ का उठना बैठना शास्त्रों के स्वाध्याय से भी श्रेष्ठतर है।

वस्त्रमापस्तिलान् भूमिं गन्धो वासयते यथा।
पुष्पाणामधिवासेन तथा संसर्गजा गुणाः।।

जैसे फूलों की गन्ध अपने सम्पर्क में आने पर वस्त्र, जल, तिल (तैल) और भूमि को भी सुवासित कर देती है, उसी प्रकार मनुष्य में संसर्गजनित गुण आ जाते हैं।

मानसं शमयेत्तस्माज्ज्ञानेनाग्निमिवाम्बुना।
प्रशान्ते मानसे ह्यस्य शरीरमुपशाम्यति।।

अतः जिस प्रकार जल से अग्नि को शान्त किया जाता है, उसी प्रकार ज्ञान के द्वारा मानसिक संताप को शान्त करना चाहिये। जब मानसिक संताप शान्त होता है, तब शारीरिक ताप भी शान्त हो जाता है।

तृष्णा हि सर्व पापिष्ठा नित्योंद्वेगकरी स्मृता।
अधर्मबहुला चैव घोरा पापानुबन्धिनी।।
या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न जीर्यति जीर्यतः।
योऽसौ प्राणान्तिको रोगस्तां तृष्णां त्यजतः सुखम्।

तृष्णा सबसे बढ़कर पापिष्ठा है, वह सदा उद्वेग में डालने वाली मानी गयी है। उसके द्वारा अधिकतर अधर्म में ही प्रवृत्ति होती है, वह अत्यन्त भयंकर और पापकर्मों में ही बाँध रखने वाली है। खोटी बुद्धिवाले मनुष्यों के लिये जिसका परित्याग अत्यन्त कठिन

है, जो मनुष्य-शरीर के बूढ़े होने पर भी स्वयं बूढ़ी नही होती-अपितु नित्य तरूणी ही बनी रहती है, जो मानव के लिये एक प्राणान्तकारी रोग के सदृश है, ऐसी तृष्णा को जो त्याग देता है, उसी को सुख मिलता है।

यथैधः स्वसमुत्थेन वह्निना नाशमृच्छाति। तथाकृतात्मा लोभेन सहजेन विनश्यति।।

जैसे लकड़ी अपने ही भीतर से प्रकट हुई आग के द्वारा जलकर नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार जिसका मन वश में नही हुआ, वह पुरूष अपने साथ ही पैदा हुई लोभवृत्ति (तृष्णा) से नाश को प्राप्त होता है।

अन्तो नास्ति पिपासायाः संतोषः परमं सुखम्। तस्मात्संतोषमेवेह परं पश्यन्ति पण्डिताः।।

तृष्णा का कहीं अन्त नही है, संतोष ही परम सुख है। अतः विद्वान पुरूष इस संसार में संतोष को ही सबसे श्रेष्ठ मानते हैं।

अनित्यं यौवनं रूपं जीवितं रत्नसंचयः। ऐश्वर्य प्रियसंवासो गृध्येत्तत्र न पण्डितः।।

यह तरूण अवस्था, यह रूप, यह जीवन, रत्नराशिका यह संग्रह, ऐश्वर्य तथा प्रिय-जनों का सहवास-सब कुछ अनित्य है। अतः विवेकी पुरूष को इसमें आसक्त नही होना चाहिये।

धर्मार्थ यस्य वित्तेहा वरं तस्य निरीहता। प्रक्षालनाद्धि पंकस्य श्रेयो न स्पर्शनं नृणाम्।।

जो धर्म के लिये धन पाना चाहता है, उस पुरूष के लिये धन की ओर से निरीह हो जाना ही उत्तम है, क्योंकि कीचड़ को लगाकर धोने की अपेक्षा उसका स्पर्श ही न करना, मनुष्यों के लिये श्रेयस्कर है।

सत्यवादी लभेतायुरनायासमथार्जवम्।
अक्रोधनोऽसूयश्च निर्वृर्ति लभते पराम्।।

सत्यवादी पुरूष आयु,आयासहीनता और सरलता को पाता है तथा क्रोध और असूयासे रहित मनुष्य परम शांति प्राप्त करता है।

महात्मा भद्र

शास्त्रों का स्थिर सिद्धांत

आलोक्य सर्वशस्त्राणि विचार्य च पुनः।
इदमेकं सुनष्पिन्नं ध्येयों नारायणः सदा।।

सब शास्त्रोंको देखकर और बार-बार विचार करके एक-मात्र यही सिद्धान्त स्थिर किया गया है कि सदा भगवान् नारायण का ध्यान करना चाहिए।

सकृदुचरितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम्।
बद्धः परिकंरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति।।

जिसने "हरि" इन दो अक्षरों एक बार भी उच्चारण कर लिया,उसने मोक्षधामतक पहुँचने के लिये मानो कमर कस ली है।

महर्षि मुँद्गल

पतनान्ते महादुःखं , परितापः सुदारूणः।
स्वर्गभजश्चरन्तीह ,तस्मात् स्वर्ग न कामये।।
यत्र गत्वा न शोचन्ति न व्यथन्ति चरन्ति वा।
तदहं सीनमत्यन्तं मार्गयिष्यामि केवलम्।।

(स्वर्ग से) पतन के बाद स्वर्गवासियों को महान् दुःख और बड़ा भारी दारूण पश्चाताप होता है,इसलिए मुझे स्वर्ग नहीं चाहिये। अब मैं तो उसी सीन को ढूढूँगा ,जहां जाने-पर शोक और व्यथा से पिण्ड छूट जाता है।

महर्षि मैत्रेय

भगवाद्गुण महिमा

एकान्तलाभं वचसों नु पुंसां
सुश्रलोकमौलेर्गुणवादमाहुः।
श्रुतेश्च विद्वाद्रिरुपाकृतायां
कथासुधायामुपसम्प्रयोगम्।।

महापुरूषों का मत है कि पुण्यश्र्लोकशिरोमणि श्रीहरि के गुणों का गान करना ही मनुष्यों की वाणी का तथा विद्वानों के मुख से भगबत्कथामृतका पान करना ही उनके कानों का सबसे बड़ा लाभ है।

स वै निवृत्तिधर्मेण वासुदेवानुकम्पया। भगवद्भत्तियोगेन तिरोधत्ते शानैरिह।।
यदेन्द्रियोपरामोऽथ द्रष्ट्रत्मनि परे हरौ। विलीयन्ते तदा क्लेशाः संसुप्तस्येव कृत्स्त्रशः।।
अशेषसंक्लेशशमं विघन्ते गुणानुवादश्रवणं मुरारेः।
कुतः । पुनस्तच्चरणारविन्द-परागसेवारतिरात्मलब्धा।।

निष्कामभाव से धर्मों का आचरण करने पर भगवत्कृपा से प्राप्त हुए भक्तियोग के द्वारा (दिहाभिमानी जीव में ही देह के मिथ्याधर्मों की) प्रतीति धीरे-धीरे निवृत्त हो जाती है। जिस समय समस्त इन्द्रियॉ विषयों से हटकर साक्षी परमात्मा श्री हरि में निश्चलभाव से स्थित हो जाती हैं, उस समय गाढ़ निद्रा में साये हुए मनुष्य के समान जीव के राग-द्वेषादि सारे क्लेश सर्वथा नष्ट हो हजाते हैं। श्रीकृष्ण के गुणों का वर्णन और श्रवण अशेष दुःखराशिको शान्त कर देता है,फिर यदि हमारे हृदय में उनके चरण-कमल की रज के सेवन का प्रेम जाग जाय,तब तो कहना ही क्या है।

भक्त सुकर्मा

माता-पिता सेवा

स्फुटमेकं प्रजानामि पितृमातृप्रपूजनम्।।
उभयोस्तु स्वहस्तेन मातापित्रोश्च पिप्पल।
पादप्रक्षालनं पुण्यं स्वयमेव करोम्यहम्।।
अंगसंवाहनं स्त्रानं भोजनादिकमेव च।
त्रिकालोपासनं भीतः साधयामि दिने दिने।।
गुरू में जीवमानौ तौ यावत् कालं हि पिप्पल।
तावत् कालं तु मे लाभो ह्यतुलश्च प्रजायते।
त्रिकालं पूजयाम्येतौ भावुशुद्वेन चेतसा।।
किं मे चान्येन तपसा किं मे कायस्य शोषणैः।
किं मे सुतीर्थयात्राभिरन्यैः पुण्यैश्च साम्प्रतम्।।
मखानामेव सर्वेषां यत्फलं प्राप्यते बुधैः।
पितुः शुश्रूषणे तद्वन्महत्पुण्यं प्रजायते।।
तत्र गङ्गा गया तत्र पुष्करमेव च।

यत्र माता पिता पिष्ठेत्पुत्रस्यापि न संशयः।।
अन्यानि तत्र तीर्थानि पुण्यानि विविधानि च।
भजन्ते तानि पुत्रस्य पितुः शुश्रूषणादपि।।
जीवमानौ गुरू एतौ स्वमातापितरौ तथा।
शुश्रूषते सुतो भक्त्या तस्य पुण्यफलं श्रृणु।।
देवास्तस्यापि तुष्यन्ति ऋषयः पुण्यवत्सलाः।
त्रयो लोकाश्च तुष्यन्ति पितुः शुश्रूषणादिह।।
मातापित्रोस्तु यः पादौ नित्यं प्रक्षालयेत् सुतः।
तस्य भागीरथीस्नानमहन्यहन्यहनि जायते।।

मैं तो स्पष्ट रूप से एक ही बात जानता हूँ- वह है पिता और माता की सेवा पूजा। पिप्पल! मैं स्वयं ही अपने हाथ से माता-पिता के चरण धोने का पुण्यकार्य करता हूँ। उनके शरीर को दबाता तथा उन्हें स्नान और भोजन आदि कराता है। प्रतिदिन तीनों समय माता-पिता की सेवा में ही लगा रहता हूँ। जब तक मेरे माँ-बाप जीवित हैं, तब तक मुझे यह अतुलनीय लाभ मिल रहा है कितीनों समय मैं शुद्ध भाव से मन लगाकर इन दोनों की पूजा करता हूँ। पिप्पल ! मुझे दूसरी तपस्या से तथा शरीर को सुखाने से क्या लेना है। तीर्थयात्रा तथा अन्य पुण्यकर्मों से क्या प्रयोजन। विद्वान् पुरुष सम्पूर्ण यज्ञों का अनुष्ठान करके जिस फल को प्राप्त करते हैं,वैसा ही महान् फल पिता की सेवा से मिलता है। जहाँ माता-पिता रहते हो,वहीं पुत्र के लिए गंगा,गया और पुष्कर तीर्थ हैं। इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। माता-पिता की सेवा से पुत्र के पास अन्यान्य पवित्र तीर्थ भी स्वयं ही पहुँच जाते है। जो पुत्र माता-पिता के जीते जी उनकी सेवा भक्तिपूर्वक करता है,उसके ऊपर देवता तथा पुण्यात्मा महर्षि प्रसन्न होते है। पिता की सेवा से तीनों लोक संतुष्ट हो जाते हैं। जो पुत्र प्रतिदिन माता-पिता के चरण पखारता है उसे नित्यप्रति गंगास्नान का फल मिहलता है।

तयोश्चापि द्विजश्रेष्ठ मातापित्रो स्नातयोः।
पुत्रस्यापि हि सर्वाङ्गे पतन्त्यम्बुकणा यदा। सर्वतीर्थसमं स्नानं पुत्रस्यापि प्रजायते।।
पतितं क्षुधितं वृद्धमशक्तं सर्वकर्मसु। व्याधितं कुष्ठिनं तातं मातरं च तथाविधाम्।।
उपाचरति यः पुत्रस्तस्य पुण्यं वदाम्यहम्। विष्णुस्तस्य प्रसन्नात्मा जायते नात्र संशयः।।
प्रयाति वैष्णवं लोकं यदप्राप्यं हि योगिभिः। पितरौ विकलौ दीनौ वृद्धौ दुःखतमानसौ।।
महागदेन संतप्तौ परित्यजति पापधीः। स पुत्रो नरकं याति दारूणं कृमिसंकुलम्।।
वृद्धाभ्यां यः समाहूतो गुरूभ्यामिह साम्प्रतम्। न प्रयाति सुतो भूत्वा तस्य पापं वदाम्यहम्।।
विष्ठाशी जायते मूढोऽमेध्यभोजी न संशयः। यावजन्मसहस्रं तु पुनः श्वानोऽभिजायते।।
पुत्रगेहे स्थितौ मातापितरौ वृद्धकौ तथा। स्वयं ताभ्यां विना भुक्त्वा प्रथमं जायते घृणिः।।
मूत्रं विष्ठां च भुञ्जीत यावज्जन्मसहस्रकम्। कृष्णसर्पो भवेत् पापी यावज्जन्मशतत्रयम्।।
पितरौ कुत्सते पुत्रः कटुकैर्वचनैरपि। स च पापी भवेद्व्याघ्रः पश्चाद्दुःखी प्रजायते।।
मातरं पितरं पुत्रो न नमस्यति पापधीः। कुम्भीपाके वसेत्तावद्यावद्युगसहस्त्रकम्।।
नास्ति मातुः परं तीर्थं पुत्राणां च पितुस्तथा। नारायणसमावेताविह चैव परत्र च।।
तस्मादहं महाप्राज्ञ पितृदेवं प्रपूजये। मातरं च तथा नित्यं यथायोगं यथाहितम्।।
पितृमातृप्रसादेन संजातं ज्ञानमुत्तमम्। त्रैलोक्यं सकलं विप्रसम्प्राप्तं वश्यतां मम।।
अर्वाचीनं परं ज्ञानं पितुश्चास्य प्रसादतः। पराचीनं च विप्रेन्द वासुदेवस्वरूपकम्।।

सर्वज्ञानं समुद्भूतं पितृमातृप्रसादतः। को न पूजयते विद्वान पितरं मातरं तथा।।
सांङ्गोपाङ्गैरधीतैस्तैः श्रुतिशास्त्रसमन्वितैः। वेदैरपि च किं विप्र पिता येन न पूजितः।।
माता न पूजिता येन तस्य वेदा निरर्थकाः। यज्ञैश्च तपसा विप्र किं दानैः किं च पूजनैः।।
प्रयाति तस्य वैफल्यं न माता येन पूजिता। न पिता पूजितो येन जीवमानो गृहे स्थितः।।
एष पुत्रस्य वै धर्मस्तया तीर्थं नरेष्विह। एष पुत्रस्य वै मोक्षस्तया जन्मफलं शुभम्।।
एष पुत्रस्य वै यज्ञो दानमेव न संशयः।।

द्विजश्रेष्ठ! माता-पिता को स्नान कराते समय जब उनके शरीर से जल के छींटे उछलकर पुत्र के सम्पूर्ण अंगों पर पडते हैं, उस समय उसे सम्पर्णू तीर्थों में स्नान करने का फल होता है। यदि पिता पतित, भूख से व्याकुल, वृद्ध, सब कार्यों में असमर्थ, रोगी और कोढ़ी हो गये हों तथा माता की भी वही अवस्था हो, उस समय में भी जो पुत्र उनकी सेवा करता है, उस पर निःसन्देह भगवान् श्रीविष्णु प्रसन्न होते हैं। वह योगियों के लिये भी दुर्लभ भगवान् श्रीविष्णु के धाम को प्राप्त होता है। जो किसी अंग से हीन, दीन, वृद्धि, दुखी तथा महान् रोग से पीड़ित माता-पिता को त्याग देता है, वह पापात्मा पुत्र कीड़ों से मरे हुए दारूण नरक में पड़ता है। जो पुत्र बूढ़े मॉ-बाप के बुलाने पर भी उनके पास नहीं जाता, वह मूर्ख विष्ठा खाने वाला कीड़ा होता है तथा हजार जन्मों तक उसे कुत्ते की योनि में जन्म लेना पड़ता है। वृद्ध माता-पिता जब घर में मौजूद हो, उस समय को पुत्र पहले उन्हें भोजन करता है। इसके सिवा वह पापी तीन सौ जन्मों तक काला नाग होता है। जो पुत्र कटुवचनों द्वारा माता पिता की निन्दा करता है, वह पापी बाघ की योनि में जन्म लेता है तथा और भी बहुत दुःख उठाता है। जो पापात्मा पुत्र माता-पिता को प्रणाम नही करता, वह हजार, युगों तक कुम्भीपाक नरक में निवास करता है। पुत्र के लिये माता-पिता से बढ़कर दूसरा कोई तीर्थ नहीं है। माता पिता इस लोक और परलोक में भी नारायण के समान है। इसलिए महाप्राज्ञ! मैं प्रतिदिन माता-पिता की पूजा करता और उनके योग-क्षेम की चिन्ता में लगा रहता हूँ। पिता-माता की कृपा से मुझे उत्तम ज्ञान प्राप्त हुआ है, इसी से तीनों लोक मेरे श में हो गये हैं। माता-पिता के प्रसाद से ही मुझे प्राचीन तथा वासुदेवस्वरूप अर्वाचीन तत्व का उत्तम ज्ञान प्राप्त हुआ है। मेरी सर्वज्ञता में माता-पिता कीसेवा ही कारण है। भला, कौन ऐसा विद्वान पुरूष होगा, जो पिता-माता की पूजा न ही करेगा। ब्राह्मन्! श्रुति (उपनिषद्) और शास्त्रोंसहित सम्पूर्ण वेदों के सांगोपांग अध्ययन से ही क्या लाभ हुआ, यदि उसने माता-पिता का पूजन नही किया। उसका वेदाध्ययन व्यर्थ है। उसके यज्ञ, तप, दान और पूजन से भी कोई लाभ नहीं। जिसने मॉ बाप का आदर नहीं किया, उसके सभी शुभ कर्म निष्फल होते हैं। निःसंदेह माता-पिता ही पुत्र के लिये धर्म, तीर्थ, मोक्ष, जन्म के उत्तम फल, यज्ञ और दान आदि सब कुछ हैं।

भक्त सुव्रत

प्रार्थना

संसारसागरमतीव गभीरपारं दुःखोर्मिभिर्विविधमोहमयैस्तरङ्गैः।
सम्पूर्णमस्ति निजदोषगुणैस्तु प्राप्तं तस्मात् समुद्धर जनार्दन मां सुदीनम्।।
कर्माम्बुदे महति गर्जति वर्षतीव विद्युल्लतोल्लसति पातकसञ्चयो मे।
मोहान्धकारपटलैर्मम नष्टदृष्टे- र्दीनस्य तस्य मधुसूदन देहि हस्तम्।।
संसारकाननवरं बहुदुःखवृक्षैः संसेव्यमानमपि मोहमयैश्च सिंहैः।
संदीप्तमस्ति करूणाबहुवह्नितेजः संतप्यमानमनसं परिपाहि कृष्ण।।

संसारवृक्षमतिजीर्णमपीह सूच्चं मायासुकन्दकरूणाबहुदु:खशाखम्।
जायादसङ्घछदनं फलितं मुरारे। तं चाधिरूडपतितं भगवन् हि रक्ष।।
दु:खानलैर्विधमोहमयै: सुधूमै: शोकैर्वियोगमरणान्तकसंनिभैश्च ।
दग्धोऽस्मि कृष्ण सततं मम देहि मोक्षं ज्ञानाम्बुनाथ परिषिच्य सदैव मां त्वम्।।
मोहान्धकारपटले महतीव गर्ते संसारनाम्नि सततं पतितं हि कृष्ण।
कृत्वा तरीं मम हि दीनभयातुरस्य तस्माद् विकृष्य शरणं नय मामितस्त्वम्।।
त्वामेव ये नियतमानसभावयुक्ता ध्यायन्त्यनन्यमनसा पदवीं लभन्ते।
नत्वैव पादयुगलं च महत्सुपुण्यं ये देवकिन्नरगणा: परिचिन्तयन्ति।।
नान्यं वदामि न भजामि न चिन्तयामि एवं हि मामुपगतं शरणं च रक्ष
दूरेण यान्तु मम पातकसञ्चयास्ते। दासोऽस्मि भृत्यवदहं तव जन्म जन्म
त्वत्पादपद्मयुगलं सततं नमामि।।

जनार्दन! यह संसार-समुद्र अत्यन्त गहरा है,इसका पार पाना कठिन है। यह दु:खमयी लहरों और मोहमयी भाँति-भाँतिकी तरगों भरा है। मैं अत्यन्त दीन हूँ और अपने ही दोषों तथा गुणों से-पाप-पुण्यों से प्रेरित होकर इसमें आ फँसा हूँ,अत: आप मेरा इससे उद्धार कीजिये। कर्मरूपी बादलों की भारी घटा घिरी हुई है,जो गरजती और बरसती भी है। मेरे पातकों की राशि विद्युल्लता की भाँति उसमें थिरक रही है। मोहरूपी अन्धकारसमूह से मेरी दृष्टि-विवेकशक्ति नष्ट हो गयी है,मै अत्यन्त दीन हो रहा हूँ,मधुसूदन!मुझे अपने हाथ का सहारा दीजिये। यह संसार एक महान् वन है,इसमें बहुत-से दु:ख ही वृक्ष रूप में स्थित हैं। मोह रूपी सिंह इसमें निर्भय होकर निवास करते हैं,इसके भीतर शोकरूपी प्रचण्ड दावानल प्रज्वलित हो रहा है,जिसकी आँचे से मेरा चित्त संतप्त हो उठा है। श्रीकृष्ण! इससे मुझे बचाइये। संसार एक वृक्ष के समान है,यह अत्यन्त पुराना होने के साथ बहुत ऊँचा भी है,माया इसकी जड़ है,शोक तथा नाना प्रकार के दु:ख इसकी शाखाएँ है,पत्नी आदि परिवार के लोग पत्ते है और इसमें अनेक प्रकार के फल लगे है। मुरारे ! मै इस संसार वृक्ष पर चढ़कर गिर रहा हूँ,भगवन् ! इस समय मेरी रक्षा कीजिए। मुझे बचाइए। श्री कृष्ण ! मै दु:ख रूपी अग्नि ,विविध प्रकार के मोह रूपी धुए तथा वियोग,मृत्यु और काल के समान शोकों से जल रहा हूँ,आप सर्वदा ज्ञान रूपी जल से सींचकर मुझे सदा के लिए संसार बंधन से छुड़ा दीजिए। श्री कृष्ण ! मै मोह रूपी अंधकार राशि से भरे हुए संसार नामक महान गड्ढे में सदा से गिरा हुआ हूँ,दीन हूँ और भय से अत्यंत व्याकुल हूँ,आप मेरे लिए नौका बनाकर मुझे उस गड्ढे से निकालिए,वहा से सींचकर अपनी शरण मे ले लीजिए। जो संयमशील हृदय के भाव से युक्त होकर अनन्य चित्त से आप का ध्यान करते है वे आप के मार्ग को पा लेते है। तथा जो देवता और किन्नर गण आपके दोनों परम पवित्र चरणों को प्रणाम करके उनका चिन्तन करते है,वे भी अपकी पदवी को प्राप्त होते हैं। मै। न तो दूसरे का नाम लेता हूँ न दूसरे को भजता हूँ और न दूसरे का चिन्तन ही करता हूँ,नित्य-निरन्तर आपके युगल चरणों को प्रणाम करता हूँ इस प्रकार मै आपकी शरण में आया हूँ। आप मेरी रक्षा करें,मेरे पातक समूह शीघ्र दूर हो जाय। मैं नौकर की भांति जन्म-जन्म आपका दास बना रहूँ। भगवन्!आपके युगल चरण कमलों को सदा प्रणाम करता हूँ।

भिक्षु विप्र

धन के पंद्रह दोष

अर्थस्य साधने सिद्धे उत्कर्षे रक्षणे व्यये। नाशोपभोग आयासस्त्रासश्चिन्ता भ्रमो नृणाम्।।
स्तेयं हिंसानृतं दम्भः कामः क्रोधः स्मयो मदः।भेदो वैरमविश्वासः संस्पर्धा व्यसनानि च।।
एते पञ्चदशानर्था ह्यर्थमूला मता नृणाम्।तस्मादनर्थमर्थाख्यं श्रेयोऽर्थी दूरतस्त्यजेत्।।
भिद्यन्ते भ्रातरो दाराः पितरः सुहृदस्तया।एकास्निग्धाः काकिणिना सद्यः सर्वेऽरयः कृताः।।
अर्थेनाल्पीयसा ह्येते संरब्धा दीप्तमन्यवः। त्यजन्त्याशु स्पृधो घ्नन्ति सहसोत्सृज्य सौहृदम्।।
लब्ध्वा जन्मामरप्रार्थ्यं मानुष्यं तद् द्विजाडयताम्।तदनादृत्य से स्वार्थ घ्नन्ति यान्त्यशुभां गतिम्।।
स्वर्गापवर्गयोर्द्वारं प्राप्य लोकमिमं पुमान्। द्रविणे कोऽनुषज्जेत मर्त्योऽनर्थस्य धामनि।।

धन कमाने में, कमा लेने पर उसको बढ़ाने,रखने एवं खर्च करने में तथा उसके नाश और उपभोग में-जहाँ देखो वहीं निरन्तर परिश्रम ,भय,चिन्ता और भ्रम का ही सामना करना पड़ता है। चोरी , हिंसा, झूठ बोलना, दम्भ, काम, कोध ,गर्व, अहंकार, भेद-बुद्धि, बैर, अविश्वास, स्पर्द्धा, लम्पटता, जूआ और शराब-ये पंद्रह अनर्थ मनुष्यों में धन के कारण ही माने गये हैं। इसलिए कल्याणकामी पुरूष को चाहिए कि स्वार्थ एवं परमार्थ के विरोधी अर्थनामधारी अनर्थ को दूर से ही छोड़ दे।भाई-बन्धु, स्त्री-पुत्र, माता-पिता, सगे-सम्बन्धी-जो स्नेह -बन्धन से बँधकर बिल्कुल एक हुए रहते हैं-सब के सब कौड़ी के कारण इतने फट जाते हैंकि तुरंत एक दूसरे के शत्रु बन जाते हैं। ये लोग थोड़े-से धन के लिये भी क्षुब्ध और कुद्ध हो जाते हैं। बात-की-बात में सौहार्द-सम्बन्ध छोड़ देते हैं,लागडॉट रखने लगते हैं और एकाएक प्राण लेने-देने पर उतारू हो जाते हैं। यहाँ तक कि एक दूसरे का सर्वनारश कर डालते है।। देवताओं के भी प्रार्थनीय मनुष्य-जन्म को और उसमें भी श्रेष्ठ ब्राह्मण-शरीर प्राप्त करके जो उसका अनादर करते हैं,अपने सच्चे स्वार्थ-परमार्थका नाश करते है।,वे अशुभ गति को प्राप्त होते है। यह मनुष्य-शरीर मोक्ष और स्वर्ग का द्वार है,इसको पाकर भी ऐसा कौन बुद्धिमान् मनुष्य है जो अनर्थों के धाम धन के चक्कर में फँसा रहे।

महर्षि बक

अतिथि-सत्कार

अपि शाकं पचानस्य सुखं वै मघवन् गृहे। अर्जितं स्वेन वीर्येण नाप्यपाश्रित्य कञ्चन।।

हे इन्द्र! जो दूसरे किसी का आश्रय न लेकर अपने पराकम से पैदा किये हुए शाक को भी घर में पकाकर खाता है,उसे महान् सुख मिलता है।

दत्वा यस्त्वतिथिभ्यो वै भु तेनैव नित्यशः। यावतो ह्यन्धसः पिण्डानश्नाति सततं द्विजः।।
तावतां गोसहस्त्राणां फलं प्राप्नेति दायकः। यदेनों यौवनकृतं तत्सर्व नश्यते ध्रुवम्।।

जो प्रतिदिन अतिथियों को भोजन देकर स्वयं अन्न ग्रहण करता है,वह उसी से महान् फल का भागी होता है। अतिथि ब्राह्मण अन्न के जितने ग्रास खाता है,दाता पुरूष उतने ही सहस्त्र गौओं के दान का फल सदा प्राप्त करता है और युवावस्था में उसके द्वारा किये हुए सभी पाप निश्चय ही नष्ट हो जाते हैं।

ऋषिगण

इन्द्रियनिग्रह का महत्व

दम,दान एवं यम - ये तीनों तत्वार्थदर्शी पुरूषों द्वारा बताये हुए धर्म है। इनमें भी विशेषतः दम(इन्द्रियदमन)ब्राह्मणों का सनातन धर्म है। दम तेज को बढ़ाता है,दम परम

पवित्र और उत्तम है। इसलिये दम से पुरूष पापरहित एवं तेजस्वी होता है। संसार में जो कुछ नियम,धर्म,शुभ कर्म अथवा सम्पूर्ण यज्ञों के फहल हैं,उन सबकी अपेक्षा दम का महत्व अधिक है।दम के बिना दानरूपी ग्रिया की यथावत् शुद्धि नहीं हो सकतही। अत: दम से ही यज्ञ और दम से दान की प्रवृत्ति होती हैं। जिसने इन्द्रियों का दमन नहीं किया,उसके वन में रहने से क्या लाभ। तथा जिसयने मन और इन्द्रियों का भली-भॉति दमन किया है,उसको (घर छोड़कर) किसी आश्रम में रहने की क्या आवश्यकता है। जितेन्द्रिय पुरूष जहॉं।-जहॉं। निवास करता है,उसके लिये वही-वहीं स्थान वन एवं महान् आश्रम है। जो उत्तम शील और आचारण में रत है,जिसने अपनी इन्द्रियों को काबू में कर लिया है तथा जो सदा सरल भाव से रहता है,उसको आश्रमों से क्या प्रयोजन। विषयासक्त मनुष्यों से वन में भी दोष बन जाते है तथा घर में रहकर भी यदि पॉचों इन्द्रियों का निग्रह कर लिया जाय तमो वह तपस्या ही है। जो सदा शुभ कर्म में ही प्रवृत्त होता है,उस वीतराग पुरूष के लिये घर ही तपोवन है। जो एकान्त में रहकर दृढ़तापूर्वक नियमों का पालन करता,इन्द्रियों की आसक्ति को दूर हटाता,अध्यात्मतत्व के चिन्तन में मन लगाता और सर्वदा अहिंसा-व्रत का पालन करता है,उसी का मोक्ष निश्चित है। छेड़ा हुआ सिंह,अत्यंन्त रोष में भरा हुआ सर्प तथा सदा कुपित रहने वाला शत्रु भी वैसा अनिष्ट नहीं कर सकता ,जैसा संयमरहित चियत्त कर डालता है।

अपमान और निन्दा से लाभ

अकार्पण्यमपारुष्यं संतोष:

उदारता,कोमल स्वभाव,संतोष,श्रद्धालुता,दोष-दृष्टि का अभाव,गुरू-शुश्रूषा,प्राणियों पर दया और चुगली न करना-इन्हीं को शान्त बुद्धिवाले संतों और ऋषियों ने दम कहा है। धर्म,मोक्ष तथा स्वर्ग-ये सभी दम के अधीन हैं। जो अपना अपमान होने पर कोध्र नहीं करता और सम्मान होने पर हर्ष से फूल नहीं उठता,जिसकी दृष्टि में दु:ख और सुख समान हैं,उस धीर पुरूष को प्रशान्त कहते हैं। जिसका अपमान होता है,वह साधु पुरूष तो सुख से सोता है और सुख से जागता है तथा उसकी बुद्धि कल्याणमयी होती है। परंतु अपमान करने वाला मनुष्य स्वयं नष्ट हो जाता है। अपमानित पुरूष को चाहिए कि वह कभी अपमान करने वाले की बुराई न सोचं । अपने धर्म पर दृष्टि रखते हुए भी दूसरों के धर्म की निंदा न करे।

अमृतस्येव तृप्येत अपमानस्य योगवित्। विषवच्च जुगुप्सेत सम्मानस्य सदा द्विज:।।
अपमानात्तपोवृद्धि: सम्मानाच्च तप:क्षय:। अर्चित: पूजितों विप्रो दुग्धा गौरिव गच्छाति।।
पुनराप्यायते धेन: सतृणै: सलिलैर्यथा।। एवं जपैश्च होमैश्च पुनराप्यायते द्विज:।।
आकोशकसमो लोके सह्रदन्यों न विद्यते। थस्तु दुष्कृतमादाय सुकृतं स्वं प्रयच्छति।।
आकोशमानात्रकोशेन्मन: स्वं विनिवर्तयित्। संनियम्य तदाऽऽमानममृतेनाभिषिच्चति।।

योगवेत्ता द्विजको चाहिये कि वह अपमान को अमृत के समान समझकर उससे प्रसन्नता का अनुभव करे और सम्मान को विष के तुल्य मानकर उससे घृणा करे। अपमान से उसके तप की वृद्धि होती है और सम्मान से क्षय। पूजा और सत्कार पानेवाला ब्राह्मण जप और होम के द्वारा पुन: ब्रह्मतेज से सम्पन्न हो जाता है। संसार में निन्दा करने वाले के समान दूसरा कोई मित्र नहीं है,क्योंकि वह पाप लेकर अपना पुण्य दे जाता है। निन्दा करने वालों की स्वयं निन्दा न करे,अपने मन को रोके । जो उस समय अपने चित्त को वश में कर लेता है,वह मानो अमृत से स्त्रान करता है।

धर्म का सर्वस्व

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।
मातृवत्परदारांश्च परद्रव्याणि लोष्ठवत्।।
आत्मवत्सर्वभूतानि यः पश्यति स पश्यति।

धर्म का सार सुनों और सुनकर उसे धारण करो-जो बात अपने को प्रतिकूल जान पड़े,उसे दूसरों के लिये भी काम में न लाये। जो परायी स्त्री को माता के समान,पराये धन को मिट्टी के ढेले के समान और सम्पूर्ण भूतों को अपने आत्मा के समान जानता है,वही ज्ञानी है।

भगवत्प्रेमी के सङ्ग की महिमा

तुलयाम लेवनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम्।।

भगवत्प्रेमी भक्तों के क्षणमात्र के सत्सङ्ग से *स्वर्ग एवं मोक्ष की भी तुलना नहीं की जा सकती,फिर मनुष्यों के तुच्छा भेगों की तो बात ही क्या है।*

ब्राह्मणों ने शारीरिक संयम को मानव-ब्रत बताया है और मन के द्वारा शुद्ध की हुई बुद्धि को वे दैवव्रत कहते है।

आचार्य कृप

मज्जन्मनः फलमिदं मधुकैटभारे
मत्प्रार्थनीयमदनुग्रह एष एव।
त्वद्भृत्यभृत्यपरिचारकभृत्यभृत्य-
मृत्यस्य भृत्य इति मां स्मर लोकनाथ।।

हे मानव ! हे लोकनाथ ! मेरे जन्म का यही फल है,मेरी प्रार्थना से मुझ पर होने वाली दया भी यही है कि आप मुझे अपने भृत्य के भृत्य सेवक के सेवक के दास के दास रूप से याद रक्खें।

महात्मा गोकर्ण

महत्त्वपूर्ण विचार

देहेऽस्थिमांसरूधिरेऽभिमतिं त्वज त्वं
जायासुतादिषु सदा ममतां विमुञ्च।
पश्यानिशं जगदिदं क्षणभङ्ग निष्ठः।।
धर्मं भजस्व सततं त्यज लोकधर्मान्
सेवस्व साधुपुरूषाञ्जहि कामतृष्णाम्।
अन्यस्य दोषगुणचिन्तनमाशु मुक्त्वा
सेवाकथारसमहो नितरां पिब त्वम।।

यह शरीर हड्डी ,मांस और रूधिर का पिण्ड है,इसे आप अपना स्वरूप मानना छोड़ दें और स्त्री-पुत्रादि को अपना कभी न मानें। इस संसार को रात-दिन क्षणभंगुर देखें ,इसकी किसी भी वस्तु को स्थायी समझकर उसमें राग न करें। बस,एकमात्र वैराग्य-रस के रसिक होकर भगवान् की भक्ति में लगे रहें। भगवद्भजन ही सबसे बड़ा धर्म है,निरन्तर उसी का आश्रम लिये रहें। अन्य सब प्रकार के लौकिक धर्मों से मुख मोड़ लें। सदा साधुजनों की सेवा करें। भेगों की लालता को पास न फटकने दें तथा जल्दी-से-जल्दी दूसरों के गुण-दोषों का विचार करना छोड़कर एकमात्र भगवत्सेवा और भगवान् की कथाओं के रस का ही पान करें।

सिद्ध महर्षि

मुक्त के लक्षण

य: स्यादेकायने लीनस्तूष्णीं किञ्चिदचिन्तयन्। पूर्वं पूर्वं परित्यज्य स तीर्णो भवबन्धनात्।।
सर्वमित्र: सर्वसह: शमे रक्तो जितेन्द्रिय:। व्यपेतभयमन्युश्च आत्मवान् मुच्यते नर:।।
आत्मवत् सर्वभूतेषु यश्चरेन्नियत: शुचि:। अमानी निरभीमान: सर्वतो मुक्त एव स:।।
जीवितं मरणं चोभे सुखदु:खे तथैव च। लाभालाभे प्रियद्वेष्ये य: सम: स च मुच्यते।।
न कस्यचित् स्पृहयते नावजानाति किंञ्चन। निर्द्वन्द्वो वीतरागात्मा सर्वथा मुक्त एव स:।।
अनमित्रश्च निर्बन्धुरनपत्यश्च य: क्वचित्। त्यक्तधर्मार्थकामश्च निराकांक्षी च मुच्यते।।
नैव धर्मी न चाधर्मी पूर्वोपचितहापक:। धातुक्षयप्रशान्तात्मा निर्द्वन्द्व: स विमुच्यते।।
अकर्मवान् विकाङ्क्षश्च पश्येजगदशाश्वतम्। अश्वत्थसदृशं नित्यं जन्ममृत्युजरायुतम्।।
वैराग्यबुद्धि: सततमात्मदोषव्यपेक्षक:। आत्मबन्धविनिर्मोक्षं स करोत्यचिरादिव।।

संसारबन्धन को पार कर लिया है। जो सबका सुहृद् है,सब कुछ सह लेता है,मनोनिग्रह में अनुराग रखता है,जितेन्द्रिय है तथा भय और क्रोध से रहित है,वह मनस्वी नरश्रेष्ठ संसार से मुक्त हो जाता है। जो पवित्रात्मा मन को वश में रखता हुआ समस्त भूतों के प्रति अपने ही समान बर्ताव करता है तथा जिसमें मान और गर्व का लेश भी नहीं है,वह सब प्रकार मुक्त ही है। जो जीवन और मरण में,सुख और दु:ख में,लाभ और हानि में तथा प्रिय और अप्रिय में समभाव रखता है,वह मुक्त हो जाता है। जो किसी वस्तु की इच्छा नहीं करता,किसी का तिरस्कार नहीं करता तथा सुख-दु-खादि द्वन्द्व और राग से रहित है,वह सर्वथा मुक्त ही है। जिसका कोई शत्रु या मित्र नहीं है,जो किसी को अपना पुत्रादि भी नहीं समझता,जिसने धर्म,अर्थ और इन्द्रिय-सुख का भी परित्याग कर दिया है,जिसे किसी वस्तु की आकांक्षा नहीं है,वह मुक्त हो जाता है। जो धर्म-अधर्म से परे है,जिसने पूर्व के संचित का त्याग कर दिया है,वासनाओं का क्षय हो जाने से जिसका चित्त शान्त हो गया है तथा जो सब प्रकार के द्वन्द्वों से रहित है,वह मुक्त हो जाता है। जो कर्मफल से मुक्त है,पूर्णतया निष्काम है,संसार को आश्रत्य (वृक्ष)के समान अनित्य और सर्वदा जन्म,मृत्यु एवं जरादि दोषों से युक्त देखता है,जिसकी बुद्धि वैराग्यनिष्ठ है और जो निरन्तर अपने दोषों पर दृष्टि रखता है,वह शीघ्र अपने समस्त बन्धनों को तोड़ डालता है।

मुनिवर कण्डु

प्रार्थना

संसारेऽस्मिञ्जगन्नाथ दुस्तरे लोमहर्षणे। अनित्ये दु:खबहुले कदलीदलसंनिभे।।
निराश्रये निरालम्बे जलबुद्बुदचञ्चले। सर्वोपद्रवसंयुक्ते दुस्तरे चातिभैरवे।।
भ्रमामि सुचिरं कालं मायया मोहितस्तव। न चान्तमभिगच्छामि विषयासक्तमानस:।।
त्वामहं चाद्य देवेश संसारभयपीडित:। गतोऽस्म्रि शरणं कृष्ण मामुद्धर भवार्णवात्।।
गन्तुमिच्छामि परमं पदं यत्ते सनातनम्। प्रसादात्तव देवेश पुनरावृत्तिदुर्लभम्।।

जगन्नाथ! यह संसार अत्यन्त दुस्तर और रोमांचकारी है। इसमें दु:खों की ही अधिकता है। यह अनित्य और केले के पत्ते की भाँति सारहीन है। इसमें न कहीं आश्रय है,न अवलम्ब। यह जल के बुलबुलों की भाँति चंचल है। इसमें सब प्रकार के उपद्रव भरे हुए है।यह दुस्तर होने के साथ ही अत्यन्त भयानक है। मै आपकी माया से मोहित होकर चिरकाल से इस संसार में भटक रहा हूँ,किंतु कहीं भी शान्ति नहीं पाता। मेरा मन विषयों

में आसक्त है। देवेश! इस संसार के भय से पीड़ित होकर आज मैं आपकी शरण में आया हूं। श्रीकृष्ण ! आप इस भवसागर से मेरा उद्धार कीजिए। सुरेश्वर! मैं आपकी कृपा से आपके ही सनातन परम पद को प्राप्त करना चाहता हूँ,जहाँ जाने से फिर इस संसार में नहीं आना पड़ता ।

पुराण–वक्ता सूतजी

शिवभक्ति की महिमा

सा जिह्वा या शिवं स्तौति तन्मनो ध्यायते शिवम्। तौ कर्णौ तत्कथालोलौ तौ हस्तौ तस्य पूजकौ।।
ते नेत्रे पश्यतः पूजां तच्छिरः प्रणतं शिवे। तौ पादौ यौ शिवक्षेत्रं भक्त्या पर्यटतः सदा।।
यस्येन्द्रियाणि सर्वाणि वर्तनते शिवकर्मसु। स निस्तरति संसारं मुक्तिं च विन्दति।।
शिवभक्तियुतो मर्त्यश्चाण्डालः पुल्कसोऽपि च। नारी नरो वा षण्ढो वा सद्यो मुच्येत संसृतेः।।

वही जिह्वा सफल है,जो भगवान शिव की स्तुति करती है। वही मन सार्थक है,जो शिव के ध्यान में संलग्न होता है। वे ही कान सफल हैं,जो भगवान् शिव की कथा सुनने के लिये उत्सुक रहते हैं और ये ही दोनों हाथ सार्थक हैं,जो शिवजी की पूजा करते हैं। वे नेत्र धन्य हैं,जो भक्तिपूर्वक शिव के सामने झुक जाता है। वे पैर धन्य हैं,जो भक्तिपूर्व शिव के क्षेत्र में सदा भ्रमण करते हैं। जिसकी सम्पूर्ण इन्द्रियाँ भगवान् शिव के कार्यों में लगी रहती हैं,वह संसार सागर के पार हो जाता है और भोग तथा मोक्ष प्राप्त कर लेता है। शिव की भक्ति से युक्त मनुष्य चाण्डाल,पुल्कस,नारी,पुरूष अथवा नपुंसक -कोई भी क्यों न हो ,तत्काल संसार-बन्धन से मुक्त हो जाता है।

अतिथि–सत्कार

गृहस्थानां परो धर्मो नान्योऽस्त्यतिथिपूजनात्। अतिथेर्न च दोषोऽस्ति तस्यातिक्रमणेन च।।
अति धर्यस्थ भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते। स दत्वा दुष्कृतं तस्मै पुण्यमादाय गच्छति।।
सत्यं तथा तपोऽधीतं दत्तमिष्टं शतं समाः। तस्य सर्वमिदं नष्टमतिाथ यो न पूजयेत्।।
दूरादतिथयो यस्य गृहमायान्ति निर्वृताः। स गृहस्थ इति प्रोक्तः शेषाश्च गृहरक्षिणः।।

गृहस्थों के लिये अतिथि–सत्कार से बढ़कर दूसरा कोई महान् धर्म नहीं है। अतिथि से महान् कोई देवता नहीं है। अतिथि के उल्लंघन से बड़ा भरी पाप होता है। जिसके घर से अतिथि निराश होकर लौट जाता है,उसे वह अपना पाप देकर और उसका पुण्य लेकर चल देता है। जो अतिथि का आदर नहीं करता,उसके सौ वर्षों के सत्य,तप,स्वाध्याय ,दान और यज्ञ आदि सभी सत्कर्म नश्ट हो जाते हैं। जिसके घर पर दूर से अतिथि आते हैं और सुखी होते हैं,वहीं गृहस्थ कहा गया है,शेष सब लोग तो गृह के रक्षक मात्र हैं।

भगवद्भक्ति–भगवन्नाम्

कलौ नारायणं देवं यजते यः स धर्मभाक्। दामोदरं हृषीकेशं पुरूहूतं सनातनम्।।
हृदि कृत्वा परं शान्तं जितमेव जगत्त्रयम्। कलिकालोरगादंशात् किल्बिषात् कालकूटतः।।
हरिभक्तिसुधां पीत्वा उल्लङ्घ्यो भवति द्विजः। किं जपैः श्रीहरेर्नाम गृहीतं यदि मानुषैः।।

जो कलियुग में भगवान् नारायण का पूजन करता है, वह धर्म के फल का भागी होता है। अनेको नामों द्वारा जिन्हें पुकारा जाता है तथा जो इन्द्रियों के नियन्ता है, उन परम शान्त सनातन भगवान् दामोदर को हृदय में स्थापित करके मनुष्य तीनों लोंकों पर विजय पा जाता है। जो द्विज हरिभक्ति रूपी अमृत का पान कर लेता है, वह कलिकालरूपी सॉप के डॅसने से फैले हुए पापरूपी भयंकर विष से आत्मरक्षा करने के योग्य हो जाता है। यदि मनुष्यों ने श्रीहरि के नाम का आश्रय ग्रहण कर लिया तो उन्हें अन्य मन्त्रों के जप की क्या आवश्यकता है।

हरिभक्तिश्च लोकेऽत्र दुर्लभा हि मता मम। हरौ यस्य भवेद् भक्तिः स कृतार्थो न संशयः।।
तत्तदेवाचरेत्कर्म हरिः प्रीणाति येन हि। तस्मिंस्तुष्टे जगत्तुष्टं प्रीणिते प्रीणितं जगत्।।
हरौं भक्तिं विना नृणां वृथा जन्म प्रकीर्तितम्। ब्रह्मादयः सुरा यसय यजन्ते प्रीतिहेतवे।।
नारायणमनाद्यन्तं न तं सेवेत को जनः। तस्य माता महाभागा पिता तस्य महाकृती।।
जनार्दनपद्रद्वन्द्वं हृदये येन धार्यते। जनार्दन जगद्वन्थ शरणागतबत्सल।
इतीरयन्ति ये मर्त्या न तेषां निरये गतिः।

मेरे विचार से इस संसार में श्रीहरि की भक्ति दुर्लभ है। जिसकी भगवान् में भक्ति होती है, वह मनुष्य निःसंदेह कृतार्थ हो जाता है। उसी-उसी कर्म का अनुष्ठान करना चाहिये, जिससे भगवान् प्रसन्न हों। भगवान् के संतुष्ट और तृप्त होने पर सम्पूर्ण जगत् संतुष्ट एवं तृप्त हो जाता है। श्रीहरि की भक्ति के बिना मनुष्यों का जन्म व्यर्थ बताया गया है। जिनकी प्रसन्नता के लिये ब्रह्मा आदि देवता भी यजन करते हैं, उन आदि-अन्तरहित भगवान् नारायण का भजन कौन नही करेगा। जो अपने हृदय में श्रीजनार्दन के युगल चरणों की स्थापना कर लेता है, उसकी माता परम सौभाग्यशालिनी और पिता महापुण्यात्मा है। ''जगद्‌बन्धु जनार्दन! शरणागतवत्सल!' आदि कहकर जो मनुष्य भगवान् को पुकारते हैं, उनको नरक में नही जाना पड़ता।

विष्णु भक्ति किये बिना मनुष्यों का जन्म निष्फल बताया जाता है। कलिकालरूपी भयानक समुद्र पापरूपी ग्राहों से भरा हुआ है, विषयासक्ति ही उसमें भँवर है, दुर्बोध ही फेनका काम देता है, महादुष्टरूपी सर्पों के कारण वह अत्यन्त भीषण प्रतीत होता है, हरिभक्ति की नौका पर बैठे हुए मनुष्य उसे पार कर जाते हैं। इसलिये लोगों को हरिभक्ति की सिद्धि के लिये प्रयत्न करना चाहिये। लोग बुरी-बुरी बातों को सुनने में क्या सुख पाते हैं, जो अद्भुत लीलाओं वाले श्रीहरि की लीलाकथा में आसक्त नही होते! यदि मनुष्यों का मन विषय में ही आसक्त हो तो लोक में नाना प्रकार के विषयों से मिश्रित उनकी विचित्र कथाओं को सुनना उचित है, उन्हें अवहेलनापूर्वक सुनने पर भी श्रीहरि संतुष्ट हो जाते हैं। भक्तवत्सल भगवान् हृषीकेश यद्यपि निष्क्रिय हैं, तथापि उन्होने श्रवण की इच्छावाले भक्तों का हित करने के लिये नाना प्रकार की लीलाएँ की हैं। सौ बाजपेय आदि कर्म तथा दस हजार राजसूय यज्ञों के अनुष्ठान से भी भगवान् उतनी सुगमता से नही मिलते, जितनी सुगमता से वे भक्ति के द्वारा प्राप्त होते हैं। जो हृदय से सेवन करने योग्य, संतों के द्वारा बारंबार सेवित तथा भवसागर से पार होने के लिये सार वस्तु हैं, श्रीहरि के उन चरणों का आश्रय लो रे विषय लोलुप पाप मरो! अरे निष्ठुर मनुष्यों क्यों स्वयं अपने आप को रौख नरक में गिरा रहे हो। यदि तुम अनायास ही दुःखों के पार जाना चाहते हो तो गोविन्द के चारू चरणों का सेवन किए बिना नही जा सकोगे। भगवान श्री कृष्ण के युगल चरण मोक्ष के हेतु हैं, उनका भजन करो मनुष्य कहाँ से आया है और कहाँ पुनः उसे जाना है, इस बात का विचार करके बुद्धिमान पुरूष धर्म का संग्रह करे।

जिसने मन, वाणी और क्रिया द्वारा श्री हरि की भक्ति की है उसने बाजी मार ली, उसने विजय प्राप्त कर ली, उसके निश्चिय ही जीत हो गयी- इनमें तनिक भी संदेह नही है। सम्पूर्ण देवेश्ररों के भी ईश्वर भगवान श्री हरि की ही भली-भाँति आराधना करनी चाहिए। हरि नाम रूपी महामंत्रों के द्वारा पाप रूपी निशाचरों का समुदाय नष्ट हो जाता है। एक बार भी श्रीहरि की प्रदक्षिणा करके मनुष्य शुद्ध हो जाते हैं। तथा सम्पूर्ण तीर्थों में स्नान करने का जो फल होता है उसे प्राप्त कर लेते हैं-इसमें तनिक भी संदेह नही है।

मनुष्य श्री हरि की प्रतिमा का दर्शन करके सब तीर्थों का फल प्राप्त करता है तथा विष्णु के उत्तम नाम का जप करके संपूर्ण मत्रों के जप का फल पा लेता है। द्विजवरो! भगवान विष्णु के प्रसाद स्वरूप तुलसीदल को सूँघकर मनुष्य यमराज के प्रचण्ड एवं विकराल रूप का दर्शन नही करता। एक बार भी श्रीकृष्ण को प्रणाम करने वाला मनुष्य पुनः माता के स्तनों का दूध नही पीता- उसका दूसरा जन्म नही होता। जिन पुरूषों का चित्त श्री हरि के चरणों में लगा है, उन्हें प्रतिदिन मेरा बारम्बार नमस्कार है। पुल्कस, स्वपक्ष (चाण्डाल) तथा और भी जो म्लेच्छ जाति के मनुष्य हैं वे भी यदि एक मात्र श्रीहरि के चरणों की सेवा में लगे हों तो बंदनीय और परम शौभाग्यशाली है । फिर जो पुण्यात्मा ब्राह्मण और राजर्षि भगवन के भक्त हों उनकी तो बात ही क्या है। भगवान श्रीहरि की भक्ति करके ही मनुष्य गर्भवास का दु:ख नही देखता। ब्राह्मणों! भगवान के सामने उच्च स्वर से उनके नामों का कीर्तन करते हुए नृत्य करने वाला मनुष्य गंगा आदि नदियों के जल की भाँति समस्त संसार का पवित्र कर देता है उस भक्ति के दर्शन स्पर्श से, उनके साथ वार्तालाप करने से तथा उसके प्रति भक्ति भाव रखने से मनुष्य ब्रह्म हत्या आदि पापों से मुक्त हो जाता है-इसमें तनिक भी संदेह नही है। जो श्रीहरि की प्रदक्षिणा करते हुए करताल आदि बजाकर उच्च स्वर तथा मनोहर वाणी से उनके नामों का कीर्तन करता है, उसने ब्रह्म हत्या आदि पापों को मानों ताली बजाकर भगा दिया। जो हरि भक्त कथा की फुटकर आख्यायिका भी श्रवण करता है, उसके दर्शन मात्र से मनुष्य पवित्र हो जाता है। मुनिवरों ! फिर उसके विषय में पापों की आशंका क्या रह सकती है? महर्षियों! श्रीकृष्ण का नाम सब तीर्थों में परम तीर्थ है। जिन्होंने श्रीकृष्ण नाम को अपनाया है वे पृथ्वी को तीर्थ बना देते हैं इसलिए श्रेष्ठ मुनिजन इससे बढ़कर पावन वस्तु और कुछ नही मानते। श्रीविष्णु के प्रसाद भूत निर्माल्य को खाकर और मस्तक पर धारण करके साक्षात विष्णु हो जाता है वह यमराज से होने वाले शोक का नाश करने वाला होता है वह पूजन और नमस्कार के योग्य साक्षात् श्री हरि का ही स्वरूप है- इसमें तनिक भी संदेह नही है जो इन अव्यक्त विष्णु तथा भगवान महेश्वर को एक भाव से देखते हैं, उनका पुनः इस संसार में जन्म नही होता। अतः महर्षियों! आप आदि अंत से रहित अविनाशी परमात्मा विष्णु तथा महादेव जी को एक भाव से देखें तथा एक समझकर ही उनका पूजन करें। जो हरि और हर को समान भाव से नही देखते, श्री शिव को दूसरा देवता समझते है, वे घोर नरक में पड़ते हैं, उन्हें श्रीहरि अपने भक्तों में नही गिनते। पंडित हो या मूर्ख, ब्राह्मण हो या चाडाल यदि वह भगवान का प्यारा भक्त है तो स्वयं भगवान नारायण उसे संकटों से छुड़ाते हैं। भगवान नारायण से बढ़कर दूसरा ऐसा कोई नही है। जो पाप पुन्ज रूपी वन को जलाने के लिए दावानल के समान हो, भयंकर पातक करके भी मनुष्य श्रीकृष्ण नाम के उच्चारण से मुक्त हो जाता है। उत्तम व्रत का पालन करने वाले महर्षियों! जगद्गुरू भगवान नारायण ने स्वयं ही अपने नाम में अपने से भी अधिक शक्ति स्थापित कर दी है। नाम-कीर्तन में परिश्रम तो थोड़ा होता है, किंतु हल भारी से भारी फल प्राप्त होता है- यह देखकर जो लोग किसकी महिमा के विषय में तर्क उपस्थित करते हैं वे अनेको बार नरक में पड़ते हैं । इसलिए हरिनाम की शरण लेकर भगवान की भक्ति करनी चाहिए। प्रभु अपने पुजारी को तो पीछे रखते हैं, किंतु नाम जप करने वाले को छाती से लगाये रहते हैं। हरिनाम रूपी महान वज्र पापों के पहाड़ को विदीर्ण करने वाला है। जो भगवान की ओर आगे बढ़ते हों, मनुष्य के वे ही पैर सफल हैं। वे ही हाथ धन्य

कहे गये हैं जो भगवान की पूजा में संलग्न रहते हैं। जो मस्तक भगवान के आगे झुकाता हो वही उत्तम अंग हैं। जीभ वही श्रेष्ठ है, जो भगवान् श्रीहरि की स्तुति करती है। मन भी वही अच्छा है, जो उनके चरणों का अनुगमन- चिन्तन करता है तथा रोएँ भी वे ही सार्थक कहलाते हैं जो भगवान का नाम लेने पर खड़े हो जाते हैं। इसी प्रकार आँसू वे ही सार्थक है जो भगवान की चर्चा के अवसर पर निकलते हैं। अहो! संसार के लोग भाग्य दोष से अत्यंत वंचित हो रहे हैं, क्योंकि वे नामोच्चारण मात्र से मुक्ति देने वाले भगवान का भजन नही करते। स्त्रियों के स्पर्श एवं चर्चा से जिन्हें रोमांच हो आता है, श्रीकृष्ण का नाम लेने पर नही, वे मलिन तथा कल्याण से वंचित हैं जो अजितेन्द्रिय पुरूष पुत्र शोकादि से ब्याकुल होकर अत्यंत विलाप करते हुए रोते हैं किंतु श्रीकृष्ण नाम के अक्षरों का कीर्तन करते हुए नही रोते, वे मूर्ख हैं। जो इस लोक में जीभ पाकर श्रीकृष्ण नाम का जप नही करते, वो मोक्ष तक पहुँचने के लिए सीढ़ी पाकर भी अवहेलना वश नीचे गिरते हैं इसलिए मनुष्य को उचित है कि वह कर्मयोग के द्वारा भगवान श्री विष्णु की यत्न पूर्वक आराधना करे। कर्मयोग से पूजित होने पर ही भगवान विष्णु प्रसंन्न होते हैं अन्यथा नही। भगवान् विष्णु का भजन तीर्थों से भी अधिक पावन तीर्थ कहा गया है। सम्पूर्ण तीर्थों में स्नान करने, उनका जल पीने और उनमें गोता लगाने से मनुष्य जिस फल को पाता है, वह श्रीकृष्ण के सेवन से प्राप्त हो जाता है। भाग्यवान मनुष्य ही कर्मयोग के द्वारा श्रीहरि का पूजन करते हैं। अतः मुनियों ! आप लोग परम मंगलमय श्रीकृष्ण की आराधना करें।

महाराज पृथु

प्रार्थना

वरान् विभो स्वद्वरदेश्वराद् बुधः कथं वृणीते गुणविक्रियात्मनाम् ।
ये नारकाणामपि सन्ति देहिनां, तानीश कैवल्पपते वृणे न च।।
न कामये नाथ तदप्यहं क्वचिन्, न यत्र युष्मच्चरणाम्बुजासवः।।
महत्तमान्तर्हृदयान्मुखच्युतो, विधत्स्व कर्णायुतमेष मे वरः।।

मोक्षप्रति प्रभो! आप वर देने वाले ब्रह्मदि देवताओं को भी वर देने में समर्थ हैं। कोई भी बुद्विमान् पुरूष आपसे देहाभिमानियों के भोगने योग्य विषयों को कैसे माँग सकता है। वे तो नारकी जीवों को भी मिलते हैं। अतः मैं इन तुच्छ विषयों आपसे नही माँगता। मुझे तो उस मोक्ष पद की भी इच्छा नही है, जिसमें महापुरूषों के हृदय से उनके मुख द्वारा निकला हुआ आपके चरण कमलों का मकरन्द नही है- जहाँ आपकी कीर्ति कथा सुनने का सुख नही मिलता । इसलिए मेरी तो यही प्रार्थना है कि आप मुझे दस हजार काम दें। जिनसे मैं आपके लीला गुणों को सुनता रहूँ।

यत्पाद सेवाभिरूचिस्तपस्विना, मशेषजन्मोपचितं मलं धियः।
सद्यः क्षिणोत्यन्वहमेधती सती, यथा पदांगुष्ठविनिःसृता सरित्।।
विनिर्धुताशेषमनोमलः पुमा, नसंगविज्ञानविशेषवीर्यवान्।
यदङ्घ्रिमूले कृतकेतनः पुन, र्न संसृति क्लेशवहां प्रपद्यते।।
तमेव यूयं भजतात्मवृत्तिभि, र्मनोवचः कायगुणैः स्वकर्मभिः।
अमायिनः कामदुधाङ्घ्रिपंकजं यथाधिकारावसितार्थसिद्वयः।।

जिनके चरण - कमलों की सेवा के लिये निरन्तर बढ़ने वाली अभिलाषा, उन्हीं के चरण-नख से निकली हुई गंगाजी के समान, संसार-ताप से संतप्त जीवों के समस्त जन्मों के संचित मनोमल को तत्काल नष्ट कर देती है, जिनके चरणतल का आश्रय लेने वाला

पुरूष सब प्रकार के मानसिक दोषों को धो डालता तथा वैराग्य और तत्वसाक्षात्कार रूप बल पाकर फिर इस दु:खमय संसार चक्र में नही पड़ता और जिनके चरण कमल सब प्रकार की कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं, उन प्रभु को आपलोग अपनी अपनी आजीविका के उपयोगी वर्णाश्रमोचित अध्यापनादि कर्मों तथा ध्यान स्तुति पूजादि मानसिक, वाचिक एवं शारीरिक क्रियाओं के द्वारा भजें। हृदय में किसी प्रकार का कपट न रक्खें तथा यह निश्चय रक्खे कि हमें अपने अपने अधिकारानुसार इसका फल अवश्य प्राप्त होगा।

राजा अजातशत्रु

आत्मा ही सत्य का सत्य

स यथोर्णनाभिस्तन्तुनोच्चरेद्यथाग्नेः क्षुद्रा विस्फुलिङ्गा
व्युच्चरन्त्येवमेवास्मादात्मनः सर्वे प्राणाः सर्वे लोकाः सर्वे देवाः।
सर्वाणि भूतानि व्युच्चरन्ति तस्योपनिषत् सत्यस्य सत्यमिति।।

जिस प्रकार वह मकड़ा तारों पर ऊपर की ओर जाता है तथा जैसे अग्नि से अनेक छुद्र चिनगारियाँ उड़ती हैं, उसी प्रकार इस आत्मा से समस्त प्राण, समस्त लोक, समस्त देवगण और समस्त प्राणी विविध रूप से उत्पन्न होते हैं। सत्य का सत्य यह आत्मा ही उपनिषद है।

भक्तराज ध्रुव

प्रार्थना

नूनं विमुष्टमतयस्तव मायया ते , ये त्वां भवाप्ययविमोक्षणमन्यहेतोः।
अर्चन्ति कल्पकतरूं कुणपोपभोग्य, मिच्छन्ति यत्स्पर्शजं निरयेऽपि नृणाम्।
या निर्वृतिस्तनुभृतां तव पादपद्म, ध्यानाद्भवज्जनकथाश्रवणेन वा स्यात्।
सा ब्रह्मणि स्वमहिमन्यपि नाथ भा भूत्, किंत्वन्तकासिलुलितात्पततां विमानात्।।
भक्तिं मुहुः प्रवहतां त्वयि मे प्रसंगो, भूयादनन्त महताममलाशयानाम्।
येनाञ्जसोल्बणमुरूव्यसनं भवाब्धिं नेष्ये भवद्गुणकथामृतपानमत्तः।।

प्रभो! इन शवतुल्य शरीरों के द्वारा भोगा जाने वाला, इन्द्रिय और विषयों के संसर्ग से उत्पन्न सुख तो मनुष्यों को नरक मे भी मिल सकता है। जो लोग इस विषय सुख के लिए लालायित रहते हैं और जो जन्म मरण के बन्धन से छुड़ा देने वाले कल्पतरू स्वरूप आपकी उपासना भगवत प्राप्ति के सिवा किसी अन्य उद्देश्य से करते हैं, उनकी बुद्धि अवश्य ही आपकी माया के द्वारा ठगी गई है। नाथ! आपके चरणकमलों का ध्यान करने से और आपके भक्तों के पवित्र चरित्र सुनने से प्राणियों को जो आनन्द प्राप्त होता है वह निजानन्द स्वरूप ब्रह्मा में भी नही मिल सकता। फिर जिन्हे काल की तलवार काटे डालती है उनस्वर्गीय विमानों से गिरने वाले पुरूषों को तो वह सुख मिल ही कैसे सकता है।

अनन्त परमात्मन्! मुझे तो आप उन विशुद्ध हृदय महात्मा भक्तों का संग दीजिए, जिनका आपमें अविछिन्न भक्ती भाव है, उनके संग में आप के गुणों और लीलाओं की कथा सुधा को पी-पी कर उन्मत्त हो जाऊँगा और सहज ही अनेक प्रकार के दुखों से पूर्ण भयंकर संसार सागर के उस पार पहुँच जाऊँगा।

शरणागतवत्सल शिवि

शरणागत की रक्षा

यो हि कश्चिद् द्विजान् हन्याद्, गां वा लोकस्य मातरम्।
शरणागतं च त्यजते, तुल्यं तेषां हि पातकम्।।

जो कोई भी मनुष्य ब्राह्मणों की अथवा लोकमाता गौकी हत्या करता है और जो शरण में आये हुए दीन प्राणी को त्याग देता है- उसकी रक्षा नहीं करता, इन सबको एक सा पातक लगता है।

नास्य वर्ष वर्षन्ति वर्षकाले, नास्य बीजं रोहति काल उप्तम्।
भीतं प्रपन्नं यो हि ददाति शत्रवे, न त्राणं लभते त्राणमिच्छन् स काले।।
जाता हस्वा प्रजा प्रमीयते सदा, न वै वासं पितरोऽस्य कुर्वते।
भीतं प्रपन्नं यो हि ददाति शत्रवे, नास्य देवाः प्रतिगृहन्ति हव्यम्।।
मोघमन्नं विदन्ति वाप्रचेताः, स्वर्गाल्लोकाद्भ्रश्यति शीघ्रमेव।
भीतं प्रपन्नं यो हि ददाति शत्रवे, सेन्द्रा देवाः प्रहरन्त्यस्य वज्रम्।।

जो मनुष्य अपनी शरण में आये हुए भयभीत प्राणी को उसके शत्रु के हाथ में सौंप देता है, उसके देश में वर्षाकाल में वर्षा नहीं होती, उसके बोये हुए बीज नहीं उगते और कभी संकट के समय वह जब अपनी रक्षा चाहता है, तब उसकी रक्षा नही होती। उसकी संतान बचपन में ही मर जाती है, उसके पितरों को पितृलोक में रहने को स्थान नही मिलता। (वे स्वर्ग में जाने पर नरकों में ढकेल दिये जाते हैं) और देवता उसके हाथ का हव्य ग्रहण नही करते। उसका अन्न निष्फल होता है, वह स्वर्ग से तुरंत ही नीचे गिर पड़ता है और इन्द्र आदि देवता उस पर वज्र का प्रहार करते हैं।

भक्त राजा अम्बरीष

दुर्वासा को बचाने के लिये सुदर्शन चक्र से प्रार्थना

स त्वं जगत्त्राण खलप्रहाणये, निरूपितः सर्वसहो गदाभृता।
विप्रस्य चास्मत्कुलदैवहेतवे, विधेहि भद्रं तदनुग्रहो हि नः।।
यद्यस्ति दत्तमिष्टं वा स्वधर्मो वा स्वनुष्ठितः। कुलं नो विप्रदैवं चेद् द्विजो भवतु विज्वरः।।

विश्व के रक्षक! आप रणभूमि में सबका प्रहार सह लेते हैं। आपका कोई कुछ नही बिगाड़ सकता। गदाधारी भगवान् ने दुष्टों के नाश के लिये ही आपको नियुक्त किया है। आप कृपा करके हमारे कुल के भाग्योदय के लिये दुर्वासाजी का कल्याण कीजिए। हमारे ऊपर आपका यह महान् अनुग्रह होगा। यदि मैने कुछ भी दान किया हो, यज्ञ किया हो अथवा अपने धर्म का पालन किया हो, यदि हमारे वंश के लोग ब्राह्मणों को ही अपना आराध्यदेव समझते रहे हो, तो दुर्वासाजी की जलन मिट जाय।

शान्ति कहाँ है?

दुःखज्वाला-दग्ध संसार और शान्ति-सुधारसागर

योगेश्वर श्रीकृष्ण चन्द्र ने संसार के लिये कहा- 'दुःखालयमशाश्वतम्।' यह विश्व तो दुःख का घर है। दुःख ही इसमें निवास करते हैं। साथ ही यह अशाश्वत है-नाशवान् है।

सम्पूर्ण विश्व जल रहा है। दुःख की दावाग्नि में निरन्तर भस्म हो रहा है यह संसार। क्या हुआ जो हमें वे लपटें नहीं दीख पड़तीं। उलूक को सूर्य नहीं दीखते, अन्धों को कुछ नहीं दीखता- अपने को बुद्धिमान् माननेवाला मनुष्य यदि सचमुच ज्ञानवान् होता- लेकिन वह तो अज्ञान के अन्धकार में आनन्द मनाने वाला प्राणी बन गया है। उसके नेत्रों पर मोह की मोटी पट्टी बँधी है। कैसे देखें वह संसार को दग्ध करती ज्वाला को।

अविद्या, अस्मिता, राग-द्वेष और अभिनिवेश- ये पाँच क्लेश बतलाये महर्षि पतञ्जलिने। अज्ञान, अहंकार, कुछ पदार्थों, प्राणियों, अवस्थाओं की ममता, उनकी कामना और उनसे

राग तथा उनके विरोधी पदार्थों, प्राणियों, अवस्थाओं से द्वेष एवं शरीर को आत्मा मानना- कितने ऐसे प्राणी हैं जो इन क्लेशों से मुक्त हैं?

काम क्रोध, लोभ, मोह की ज्वाला में जल रहा है संसार। तृष्णा, वासना, अशान्ति-बेचैनी का पार नही है। मद, मत्सर, वैर, हिंसा-चारों ओर दावानल धधक रहा है। दु:ख-दु:ख-और दु:ख। लेकिन जैसे पतिंगे प्रज्वलित दीपक को कोई सुखद सुभोग्य वस्तु मानकर उस पर टूटते हैं- प्राणी मोहवंश संसार की इन ज्वालाओं को ही आकर्षण मान बैठे हैं। अशान्ति-दु:ख-मृत्यु- और क्या मिलना है यहाँ।

शान्ति और सुख की आशा- संसार में यह आशा! जलते संसार में भला शान्ति कहाँ?

शान्ति है। सुख है। आनन्द है। अनन्त शान्ति, अविनाशी सुख, शाश्वत आनन्द- शान्ति, सुख और आनन्द का महासागर ही है एक। उस महासागर में खड़े हो जाने पर संसार की ज्वाला- त्रिताप का भय स्पर्श भी नही कर पाते।

कहाँ है वह?

भगवान् को छोड़कर भला, शान्ति, सुख और आनन्द अन्यत्र कहाँ होंगे। भगवान् का भजन ही है वह महा समुन्द्र। भगवान् का भजन करने वाला भक्त-साधु उस महासमुन्द्र में स्थित है।

विषयों से वैराग्य, प्राणियों में भगवद्भावना, समता, अक्रोध, सेवा, दृढ़ भगवद्विश्वास- जहाँ शीतलता और पवित्रता का यह महासागर लहरा रहा है, कामनाओं की ज्वाला, त्रितापों की ऊष्मा वहाँ तक पहुँच कैसे सकती है। वहाँ कामना की अग्नि नहीं है, स्पृहा की ज्वाला नही है, ममता के मीठे विषय का भीषण अन्तस्ताप नही है जो अहंकार की लपटें सदा के लिये शान्त हो गयी हैं।

"विहाय कामान्य: सर्वान्पुमांश्चरति नि:स्पृह:।
निर्ममो निरहंकार: स शान्तिमधिगच्छति।।"

इस निरन्तर जलते त्रिताप-तप्त संसार में तो शान्ति है ही नही। वह तो है भगवान् में - भगवान् के भजन रूप महासमुद्र में। उस शान्ति-सुधा-संसार में स्थित होने पर ही इस ज्वाला से परित्राण पाया जा सकता है।

राजा महीरथ

पुण्यात्मा कौन है?

पस्तापच्छिदो ये तु चन्दना इव चन्दना:। परोपकृतये ये तु पीडयन्ते कृतिनो हि ते।।
संतस्त एव ये लोके परदु:खविदारणा:, आर्तानामार्तिनाशार्थ प्राणा येषां तृणोपमा:।।
तैरिथं धार्यते भूमिर्नरै: परहितोद्यतै:। मनसो यत्सुखं नित्यं स स्वर्गो नरकोपम:।।
तस्मात्परसुखेनैव साधव: सुखिन: सदा। वरं निरयपातोऽत्र वरं प्राणवियोजनम्।
न पुन: क्षणमार्त्तानामार्तिनाशमृते सुखम्।।

जो चन्दन-वृक्ष की भाँति दूसरों के ताप दूर करके उन्हें आह्लादित करते हैं तथा जो परोपकार के लिये स्वयं कष्ट उठाते हैं, वे ही पुण्यात्मा हैं। संसार में वे ही संत हैं, जो दूसरों के दु:खों का नाश करते हैं तथा पीड़ित जीवों की पीड़ा दूर करने के लिये जिन्होने अपने प्राणों को तिनके के समान निछावर कर दिया है। जो मनुष्य सदा दूसरों की भलाई के लिये उद्यत रहते हैं, उन्होने ही इस पृथ्वी को धारण कर रक्खा है। जहाँ सदा अपने मन को सुख मिलता है।, वह स्वर्ग भी नरक के ही समान है, अत: साधुपुरूष सदा दूसरों के सुख से ही सुखी होते हैं। यहाँ नरक में गिरना अच्छा, प्राणों से वियोग हो जाना भी अच्छा, किंतु पीड़ित जीवों की पीड़ा दूर किये बिना एक क्षण भी सुख भोगना अच्छा नही है।

त्रैमाशिक राशिफल

(१ अप्रैल से ०५ से ३० जून ०५ तक)

मेषः- सामाजिक प्रतिष्ठा बढ़ने का दवर्दस्त योग है। आर्थिक व पारिवारिक उलझने रहेगी। परिणामों में सफलता प्राप्ति की सम्भावना है। व्यापार व नौकरी में लाभ के अवसर प्राप्त होंगे। अप्रैल मास में लाभ के अवसर प्राप्त होंगे। अप्रैल मास में कुछ कष्ट झेलना पड़ सकता है। लेन-देन प्रभावित हो सकता है। मांगलिक कार्यों का भी अवसर मिलेगा।

वृषः- आर्थिक कठिनाई रहेगी। व्यापार और कार-वार में लाभ होगा। मांगलिक कार्य में बहुत करना पड़ेगा। बाल-बच्चों का स्वास्थ्य प्रभावित होगा। पढ़ाई में सफलता मिलेगी। नया कार्य भी प्रारम्भ करना पड़ सकता है। मई में कठिनाईयों का सामना भी करना पड़ेगा।

मिथुनः-व्यापार और कार-वार से लाभ का संकेत है। मानसिक चिंता अधिक रहेगी। निरर्थक भागदौड़ बनी रहेगी। विवाद की स्थिति बन सकती है। आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। स्वाथ्य सम्बन्धी परेशानियाँ भी रहेंगी। नये कार्यों में परेशानी होगी। बाधा आ सकती है। चोर-चपेट दुर्घटनाओं की भी संभावना है। शनि की आराधना तथा हनुमान जी का दर्शन करना चाहिए।

कर्कः- परिवार में शुभ कार्यों के संपादित होने का संकेत है। शारीरिक कष्ट व चिंता बनी रहेगी। निर्माण कार्य प्रभावित हो सकते हैं। परिवार में विवाद की स्थित आ सकती है। व्यापार व कृषि कार्य में लाभ होगा। पूजा-पाठ में अधिक झुकाव होगा। तथा इसका लाभ भी मिलेगा।

सिंहः- अप्रैल से जून तक आर्थिक दृष्टि से काफी अनुकूल रहेगा। लाभ प्रदान करेगा। व्यापार, कृषि व नौकरी से लाभ होगा। निर्माण कार्य का अवसर मिलेगा। विरोधी परास्त होगें। धार्मिक व मांगलिक कार्यों में लाभ होगा। बच्चों को पढ़ाई लिखाई में उन्नति होगी।

कन्याः- स्वास्थ्य की परेशानी बच्चों को हो सकती है। पत्नी का स्वास्थ्य भी अनुकूल नही रहेगा। व्यापार व कृषि कार्य में संतोष जनक लाभ हो सकता है। मुकदमेंबाजी में धन व्यय होगा। मांगलिक कार्यों में भी धन व्यय करना पड़ेगा।

तुलाः- स्वास्थ्य अनुकूल रहेगा। विरोधी मुँह की खायेंगें। दुर्घटनाओं की आशंका है। परिवार में मांगलिक कार्य संपादित होगा। व्यापार और नौकरी में लाभ होगा।

वृश्चिक:–मानसिक परेशानी हो सकती है। आर्थिक कठिनाइयॉं रहेगीं । स्वजनों में विरोध की स्थित बनेगी। मांगलिक कार्य संपादित होंगे। बच्चों की उन्नति में लाभ, कृषि कार्य से लाभ होगा।

धनु:- आर्थिक लाभ का अच्छा योग है। परिवार का भाग्योदय हो सकता है। नौकरी, व्यापार व राजनीति मेंलाभ का योग है। मुकदमें की स्थित बन सकती है। मांगलिक कार्यों का अवसर मिलेगा।

मकर:- स्वास्थ्य अनुकूल रहेगा। सुख-सुविधायें प्राप्त होगी। मुकदमें में फैसला पक्ष में हो सकता है। नौकरी, व्यापार व कृषि कार्य में लाभ होगा। मांगलिक कार्यों में धन व्यय होगा। निर्माण कार्य में बाधा आ सकती है।

कुम्भ:- आर्थिक परेशानियॉं रहेंगी। स्वास्थ्य ठीक रहेगा। दुर्घटनाओं की संभावना है। बच्चों को पढ़ाई लिखाई में परेशानी होगी। नये कार्य में सफलता मिलेगी। मांगलिक कार्यों के संपादन का अवसर पूजा पाठ में मन लगेगा।

मीन:- मानसिक चिन्ता रहेगी। पारिवारिक कलह से परेशान हो सकती हैं। निर्माण कार्य का लाभ मिलेगा। परिवार में मांगलिक कार्य संपादित होंगे। कृषि कार्य से लाभ तथा नौकरी में भी लाभ का अवसर मिलेगा। विरोधी पराजित होंगे।

जगद्‌गुरू ब्रह्मर्षि बाबा के कार्यक्रम

१. १५ अप्रैल तक सभी कार्यक्रम निरस्त कर दिये हैं।

२. १५ अप्रैल से २० अप्रैल तक एलाहाबाद।

३. २० अप्रैल से ३० अप्रैल तक कानपुर ।

४. २ मई से १३ मई तक फूलपुर में श्रीमद्‌भागवत कथा।

५. १३ मई से ७ जून तक रीवा एवं एलाहाबाद, प्रतापगढ़ आदि का दौरा कार्यक्रम।

६. ८ मई से रावर्ट्सगंज मिर्जापुर, बनारस, गोरखपुर आदि

(कार्यक्रम की सुनिश्चतता स्वाथ्य पर निर्भर रहेगा)

पंजीयन क्रमांक : MPHIN/2000/2174

"ॐ नमो नारायणाय"

जगद्गुरु ब्रह्मर्षि बाबा

(स्वामी गरुड़ जी महाराज)

★ युवराज आफसेट, घोघर, रीवा. ✆ 256197.